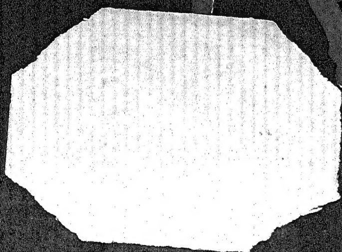
छत्रसाल

[महाकाव्य]





डॉ० राम कुमार सिंह

छत्रसाल

(महाकाव्य)

डॉ० रामकुमार सिंह

एम० ए० (राजनीति, हिन्दी), एल० टी०

पी-एच० डी, डी० लिट्

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

परास्नातक जे० एम० पटेल महाविद्यालय, भंडारा

(नागपुर विश्वविद्यालय)

आशीष प्रकाशन, इलाहाबाद

» पुस्तक

छत्रसाल (महाकाव्य)

» रचनाकार

डॉ० रामकुमार सिंह

पी-एच० डी०, डी० लिट्०

» प्रकाशक

आशीष प्रकाशन

१८१/१एन/ १०, तिलकनगर, इलाहाबाद

» संस्करण

प्रथम, १९९७

» मुद्रक

अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर

» शब्दसज्जा

आशीष ग्राफिक्स, कानपुर

» मूल्य

१००.००

अनुक्रम

पुरोवाक्

राष्ट्र-शक्ति का जागरण जिन राष्ट्र-वीरों के शौर्यपूर्ण हृदयों और पौरुष की प्रचंड भुजाओं में होता है वह उनकी संतान के रक्त में भी प्रवहमान रहता है। यदि श्रीकृष्ण के सत्यवादी माता-पिता बंदीगृह की यातनाएँ झेलते हुए, अपनी नवजात संतानों के बलिदानों को अपने हृदय पर पत्थर रखे हुए अपनी आँखों से देखते रहे और जैसे भी अपने धैर्य और आत्म-विश्वास को स्थिर रख सके तथा जिस प्रकार आशा के केन्द्र स्थल अपनी नवजात संतान श्रीकृष्ण की रक्षा के निमित्त उफनाती यमुना को पारकर, उसकी सुरक्षा की पूरी सुव्यवस्था कर यथास्थान लौटे थे, वह असामान्य कार्य था। छत्रपति महाराज शिवाजी का बाल्यकाल भी उनके शौर्यवान माता-पिता और दादा जी की साहसपूर्ण गाथायें अपने में पिरोये हुए है। तदनुसार हिन्दूपति महाराज छत्रसाल बुंदेला के शौर्यपूर्ण राष्ट्र-धर्मोद्धारक जीवन में उनके बुंदेलखंड-केसरी माता-पिता की बलिदानी जीवन-गाथायें बोल रहीं हों तो इसमें आश्चर्य क्या ? राष्ट्र-केशरी श्री गुरुगोविन्द सिंह और उनके महात्मा पिता का बलिदानी शौर्य हमें कौन-सी प्रेरणा देता है ? वर्तमान युग में सरदार वल्लभभाई पटेल के पिता का वीर रक्त क्या उनके रक्त की ओजस्वी वीरता में अपना परिचय नहीं दे रहा है। राष्ट्र-वीर आजाद, भगतसिंह और श्री सुभाषचन्द्र बोस का चरित्र हमसे क्या कह रहा है ? और आज यदि हम राष्ट्र-संतानें अपने उन समस्त महान् ऐतिहासिक पूर्वजों (राम-कृष्ण, चंद्रगुप्त-चाणक्य, समुद्रगुप्त, स्कंदगुप्त आदि) के महानतम कर्मों से अपने वर्तमान स्वाभिमान को प्रज्वलित करते हैं तो इसमें अनुचित क्या है ? आखिर, इतिहास के परिप्रेक्षण का उद्देश्य क्या कुछ और हो सकता है ? एक प्रतिभा के प्रकाश से संसार दीप्तिमान हो जाता है, एक चेतना की अँगड़ाई नये युग को जन्म दे जाती है : हमारे जीवन और संस्कृति का इतिहास हमें अनुक्षण अनुप्राणित करने वाले आद्यन्त बलिदानी अमर-वीरों का लेखा जोखा है, हमें उसका बारंबार अवलोकन क्यों नहीं करना चाहिए। इस संबंध में हमें इस्रायल से प्रेरणा लेनी चाहिए जो अपना समस्त देश खोकर भी, कभी पुनः अपने पूर्वजों की धरती पर लौटने का विश्वास सँजोये रहे, परिणाम स्वरूप लौटे भी तथा विधर्मियों द्वारा चर्च तोड़कर स्थापित की हुई मस्जिद को तोड़कर अपना जेरूसलम का चर्च और अपनी राजधानी की पुनर्स्थापना कर सके। क्या हमें पाकिस्तान और बंगालदेश देश की स्थापना को भूलना चाहिए ? वे हमारे देश के ही अंश है, भारत देश के लिए उप महाद्वीप की संज्ञा एक शरारत है। स्मरण रहे, इतिहास हमारे राष्ट्र-धर्म, जीवन और संस्कृति का दर्पण होता है। अस्तु, उसे भुला देना वृक्ष की जड़ें सड़ा देने जैसा आत्महत्या का उपक्रम होगा। स्मरण रहे, जल की मछली

अपने जल में ही जीवित, मुक्त और सुखी रह सकती है, किसी के द्वारा प्रदत्त दुग्ध-कुंड में नहीं । अस्तु, किसी अन्य प्रलोभन में तो हमारा जीवन ही असंभव हो जायेगा । जिस देश, जाति, संस्कृति और धर्म में हमारा जन्म हुआ है, जिस जलवायु और धूप में सृष्टि काल से हम पले हैं उसी में हमारा जीवन हो सकता है, अन्यत्र कदापि नहीं । गुलामी की मानसिकता में जकड़े हुए (कांग्रेसी जन जैसे) लोग शायद अपने इस शक्ति-गर्भित अस्तित्व को समझ या पहचान नहीं सकेंगे । तथापि इतना कहना चाहूँगा कि काल-क्रम से पतन के गर्त मे गिरी हुई एक पुराकाल की समुन्नत जाति को अपना यथार्थ इतिहास अवलोकन करते हुए, उत्तम भविष्य के पुनर्निर्माण के लिए वर्तमान युवा पीढ़ी को सप्रयत्न, सचेत और सचेष्ट अवश्य करना चाहिए ।

आश्चर्य और दुख है कि आज हमे अपना वह गौरवशाली इतिहास भी पढ़ने नहीं दिया जाता, जिससे हममें अपना राष्ट्रीय और सांस्कृतिक स्वाभिमान जागृत हो सके। इस गांधीवादी नेहरुवादी लबादे में हमारा बहुत-कुछ नष्ट हो चुका है और होता जा रहा है । उनके दर्शन का भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कहीं कोई विशेष प्रभाव नहीं परिलक्षित हो रहा है। उल्टे, उत्तरोत्तर हमारा राष्ट्रीय सर्वस्व विनष्ट होता जा रहा है । उनके उत्तराधिकारी तो राष्ट्र भक्षक ही सिद्ध हो रहे हैं । आज हमको अपने स्वाभिमानी वीर योद्धाओं का इतिहास भी भूळ°आ फढ़ रहा है । आज हमें अपने को हिन्दू कहना भी अपने प्रति साम्प्रदायिकता का लांछन हो गया है, जबकि अन्यों के लिये नहीं । याद रखिये-

न साम रक्षस्सुगुणाय कल्पते ।
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ॥

"क्रूर मनुष्यों पर साम अर्थात् मेल की नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इसी प्रकार धन-सम्पन्न लोगों के प्रति दान की नीति का कोई उपयोग नहीं होता ।"

हिन्दुओं की अवनत दशा का इतिहास भी उनकी स्वधर्म-निष्ठा, पवित्रता और शूरता-वीरता का अनन्य प्रमाण है । यह भी सच है कि ऐसे संकट के समय में भी इस जाति में ही ऐसे अनेक कायर देश-विघातक, जाति-द्रोही, राष्ट्र-द्रोही, अधर्मी, विश्वासघाती भी उत्पन्न हुए हैं, जो धर्म-जाति और राष्ट्र को, राष्ट्रीय स्वतंत्रता को स्वार्थी प्रलोभनों में पड़कर शत्रु विधर्मियो के हाथों बेचते रहे हैं । ऐसी स्थिति, अधर्म की ऐसी आँधी तथा जीवन और मृत्यु की ऐसी विपत्तियों में भी यदि हमारी जाति मुसलमानी तलवार के नीचे सभी प्रकार के क्रूरतम अत्याचार सहन करती हुई शूर-वीर उत्पन्न करती हुई, अपने धर्म और स्वराष्ट्र-प्रेम पर स्थित है तो इससे बड़ा प्रमाण उसकी जीवंत शूरता का और क्या हो सकता है ? क्या संसार में ऐसा प्रमाण क़िसी अन्य जाति के भी इतिहास में उपलब्ध होता है, क्या मुसलमानों के धार्मिक जोश, नृशंसता और तलवार के सामने कोई अन्य जाति इस प्रकार सिर ऊँचा कर सकी थी, लगभग आठ सौ वर्ष तक ऐसे विदेशी विधर्मी धर्मांध कठोर शासकों के काल-शासन में रहकर भी आंज इतने करोड़ हिन्दुओं की संख्या अपने पूर्वजों के धर्म

पर स्थित है, यह क्या कम आश्चर्यजनक है। आज जो मुसलमानों की इतनी बड़ी तादाद देखी जाती है, यह उन्हीं हिन्दुओं की संतान है जो तलवार के जोर से, या किसी प्रकार के प्रलोभन से, या अपने अनिष्ट के भय से अथवा अत्याचारों और जजिया कर से मुक्ति के लिए मुसलमान हो गये थे।

'हिन्दुओं की शूरता और कायरता को तोलना हो तो भारत और योरोपीय इटली (रोम) के इतिहास की तुलना करें। इतनी और ऐसी प्रबल लड़ाकू ईसाई शक्तियाँ, जिनस आज संसार काँपता है तथा जो अपनी सहधर्मी ईसाई प्रजा के लिए सहायक रूप में तैयार रहती हैं आज एक हजार वर्ष से ऊपर हुए, एशिया और योरूपियन टर्की के ईसाई तक तुर्कों के पंजे से नहीं निकल सके। सौ वर्ष पूर्व तक समस्त एशियाई और युरोपियन टर्की में कोई भाग भी ईसाई आबादी का ऐसा न था जो स्वतंत्र हो। सैकड़ो वर्षों तक टर्की में कोई स्वतंत्र ईसाई राज्य हमें दिखलाई नहीं देता था, निस्संदेह उन्नीसवी शती में अन्य युरोपियन शक्तियों की सहायता से टर्की के कुछ हिस्से स्वतंत्र हो गये, तब भी टर्की के मध्य भीतरी भाग में कोई भी स्वतंत्र ईसाई राज्य दिखाई नहीं दिया।उसके विपरीत, कठोर से कठोर और शक्ति-सम्पन्न मुसलमानी बादशाह के शासन काल में भी समस्त हिन्दू मुसलमानी राज्य की प्रजा नहीं हुए। प्रचंड मुसलमानी शासन और शक्ति के सामने भारत के मध्य, उत्तर और पश्चिम में स्वतंत्र हिन्दू राज्य स्वयं को शक्ति-सम्पन्न और सुरक्षित बनाए हुए थे इस संबंध में छत्रपति शिवाजी, हिन्दूपति छत्रसाल, गुरुगोविंदसिंह, बन्दा वैरागी, दुर्गादास राठौर, छत्रसाल बुन्देला, सतनामी (म०प्र०), जाट, लांचित कर फुंकन (असम) आदि न जाने कितने राष्ट्रवीरों का नाम लिया जा सकता है, और इन्हीं के प्रचंड थपेड़ों से औरंगजेब के साथ ही प्रचंड मुगल-शासन चरमराकर ध्वस्त हो गया। उसके बहुत पूर्व भी सिकंदर, शक-हूण आदि कितने ही आक्रामक भारतभूमि में आकर भारतीय वीरों के सन्मुख धूल चाट गये। जो भारत को गुलाम प्रवृत्ति का मानते व उसका उपहास करते हैं उन्हें आँख खोलकर भारतीय इतिहास पढ़ना चाहिए। भारत ने कभी भी गुलामी सहन नहीं किया-गुलामी के प्रतिकार के लिए हमारे राष्ट्र-वीरों के हथियार सदैव चलते रहे। यदि महान सम्राट शिवाजी का असामयिक निधन न हुआ होता तो इतना निश्चित था कि मराठा, बुंदेल, श्री दुर्गादास राठौर और सिक्खवीर लाल किले पर भगवाध्वज अवश्य फहरा देते।

छत्रपति महाराज शिवाजी और उनके प्रवीर राजनैतिक शिष्य हिन्दूपति महाराज छत्रसाल बुंदेला भारतीय इतिहास के असाधारण हिन्दूवीर हैं : वे राष्ट्रभक्ति, संस्कृति, स्वधर्म, मानवता और स्वतंत्रता के संदेश वाहक हैं। तद्वत् यवन-मुगल शासित भारत में सिक्ख हिन्दू-गुरुओं, महाराजा रणजीत सिंह, हरीसिंह नलवा आदि अनेक महान हिन्दुवीरों के प्रेरणास्पद पुनीत, आदर्श आख्यान हैं, राष्ट्र-धर्म की रक्षा के पुनीत प्रेरणा-स्रोत हैं जिनका गुणगान वीर राष्ट्र कवि भी करते आये हैं।

इस दृष्टि से मैंने छत्रपति महाराज शिवाजी व महाराज छत्रसाल के जीवन पराक्रम पर आधारित दो यथार्थ ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना की है। तद्वत आधुनिक

महान. राष्ट्रीय आंदोलन के सरदार 'लौह पुरुष सरदार पटेल' खंड काव्य लिख चुका हूँ। श्री गुरुगोविन्द सिंह, श्री सुभाषचंद्र बोस पर लिखने की इच्छा आज भी है। ये महान राष्ट्रीय वीर चरित्र स्वदेश, स्वराष्ट्र, स्वधर्म और संस्कृति प्रेमी भारतीयों के लिए सर्वथा पठनीय हैं।

मेरे पूज्य पिता श्री दुलारेसिंह जी राष्ट्रभक्त आर्य समाजी थे और उस राष्ट्रीय आंदोलन काल में अपने ग्रामीण क्षेत्र के सक्रिय कांग्रेस कार्यकर्ता भी थे। उन्होंने काकोरी-षड़यंत्र के क्रांतिकारियों को भी अपनी सघन अमराई में कुछ दिन तक छिपाये रक्खा था, उस समय यदि शासन को भनक लग जाती तो मेरे पिता जी भी फंदे में झूल जाते। उन्हीं की प्रेरणा से सन् १९३७ के जिला-परिषद के प्रथम निर्वाचन में मेरे ममेरे भ्राता बाबू गिरिजाशंकर जी (ग्राम टेढ़ा) मौराँवा के ताल्लुकेदार श्री गुरुनारायण खत्री (शासन पक्ष) के विरुद्ध कांग्रेस पक्ष से खड़े होकरके विजयी हुए थे। वे मुझे 'हिन्द के हीरे' शीर्षक इतिहास की पुस्तक पढ़ाया करते थे, जिसमें लिखित, राणा प्रतापसिंह, छत्रपति शिवाजी, महाराजा छत्रसाल, श्री गुरु गोविन्द सिंह जी आदि उनके प्रिय वीर-पात्र थे। वे मुझे राष्ट्र कवि 'भूषण' के - 'सौरँग हैं शिवराजबली, जिन नौरँग में रँग एक न राख्यो', तथा 'शिवाजी न होतो तो सुन्नति होति सबकी'- आदि छंद जब-तब सुनाया करते थे। वे स्वयं भी उसी रूपरेखा के धाकड़, बलशाली वीर पुरुष थे, जवार में उनकी धाक थी।

बाल्यजीवन का वही स्थायीभाव, जीवन के चौथेपन में इन ऐतिहासिक राष्ट्रीय महाकाव्यों के रूप में उद्गीरित हुआ है, राष्ट्रीय भावना की प्रेरणास्पद इन वीर-चरित रचनाओं से मुझे अपरिमित संतोष प्राप्त हुआ है : और भी लिखने की इच्छा होती है किंतु जीविकार्थ कृषि- कार्यों आदि से अवकाश नहीं मिल पाता। लेखन के उपरांत प्रकाशन भी एक परम दुष्कर कार्य है, अपनी इतनी आय नहीं', पेंशन आदि का भी कोई सहारा नहीं, ऐसी स्थिति में मन की संकल्पनाओं की पूर्ति असंभव है निरवधि च कालोऽयं विपुला च पृथ्वी – - -'। ईश्वर की इच्छानुसार ही जो कुछ भी जितना होना होता है, होता है। मैं नहीं तो कोई न कोई तो समानधर्मा लिखेगा ही।

प्रस्तुत रचना का एक विशेष कारण बना। अयोध्या-मंदिर की ६ दिसंबर १९९२ 'ढाँचा-ध्वस्त' घटना के उपरांत प्रतिबन्धित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के 'कृषि शिक्षा' नाम से प्रच्छन्न मौराँवा-कालेज के विशेष कैम्प में मैं वर्ग-संचालक' बना, वहीं मुझे छत्रसाल शीर्षक छोटी सी जीवनी पुस्तक मिल गई, जिसे मैंने क्रय कर लिया। पुनः मुझे जिला संगठक श्री महिरजध्वज सिंह जी से महाराजा छत्रसाल की जीवनी की एक बड़ी पुस्तक प्राप्त हुई, मन में उत्साह विशेष था ही। फलतः प्रस्तुत महाकाव्य का सर्जन संभव हुआ। विचित्र बात है कि रचना के अनेक अंश आगे-पीछे लिखे गये हैं- जो बाद में लिखे जाने चाहिए थे, वे पहले ही लिख डाले गये। रचना-काल और तिथियाँ लिख दी हैं। अध्येताओं के मन में ऐसी

रचनात्मक पृष्ठभूमि पर आश्चर्य तो होगा ही किंतु कवि लेखनी की बहँक अपनी होती है। यदा-कदा मेरी लेखनी से स्वप्न-रचनायें, अदृष्ट रचनायें भी निःसृत हो जाती हैं।

मेरे पूर्वज महाराजा जयचंद के शासन काल में सैन्य अधिकारी आदि थे। राज्य विघटन आदि के समय कन्नौज से आकर इस क्षेत्र में प्रबंधक आदि के रूप में पाटन में प्रतिष्ठित हुए थे (संभवतः इसी समय महाराजा जयचंद के भतीजों ने जयपुर राज्य की स्थापना की थी)। यहीं हम चौधरी कुर्मी समाज की इस क्षेत्र में प्रथम 'पाट' या पीठिका अथवा राजधानी थी- आज भी पाटन मंदिरों-कुओं तालाबों वनबागों, कृषि आदि से भरपूर एक बड़ा, सम्पन्न, सुंदर गाँव है। यहीं हमारे कुलदेवता पूज्य श्री ब्रह्मदेव जी का मंदिर है पास ही श्री ठाकुर जी मंदिर नाम से प्राचीन विष्णुमंदिर भी है। श्री ब्रह्मदेव का मंदिर मातृकाओं सहित १८ बीधे भूमि में प्रतिष्ठित है तथा आन के अनुसार समस्त चौधरीवंश उसका भागी है, तथापि उस वन का एक तिनका भी घर लाना चौधरियों के लिए मना है। चौधरी नव वर-वधू उनके दर्शन-पूजा के लिए अवश्य जाते हैं, शिशुओं का मुंडन-संस्कार भी प्रायः वहीं सम्पन्न कराते हैं। लगभग उसी समय टेढ़ा, बीघापुर व चमियानी में भी कुर्मियों (कूर्म वंशियों) की जमीदारियाँ स्थापित हुई थीं, इन प्रत्येक गाँवों के मध्य भाग में एक दुर्गा देवी मंदिर भी परमपूज्य है। कुर्मियों के चारों गाँव बैसवारे क्षेत्र की शान हैं। हमारी कूर्म क्षत्रिय जाति अति प्राचीन आर्य जाति है जो वर्तमान समय में भी अपनी आर्य धर्म की उत्तम परंपराओं एवं उदात्त मानवीय गुणों को धारण किए हुए है। अब तो इन बड़े गाँवों के चतुर्दिक कुर्मियों की विस्तृत अनुषंगी बड़ी-छोटी समृद्ध बस्तियाँ हैं जो अपने प्रमुख कृषि- व्यवसाय में लिप्त रहती हैं।

तब भी आश्चर्य है कि कुर्मी और ठाकुर (राजपूत) जातियाँ किसी भी ग्राम में एक साथ नहीं रहतीं। इस क्षेत्र में एक मात्र अपवाद गौरैया गाँव है किंतु वहाँ भी दोनों के निवास में कुछ मध्यांतर है तथापि दोनों समाजों में प्रेम और सख्य है। नवाबी जमाने में एक बार गंगापार के गुनीर गाँव के (गोहलौतों) गौतमों ने बैसवारे क्षेत्र के २८ गाँवों को अधिकृत कर लिया था। उस समय टेढ़ा २५ गाँवों का राज्य था, किन्तु बाद में टेढ़ा के कुर्मियों और बैस राजपूतों ने उनसे अपना ताल्लुका छीन लिया था। तभी से टेढ़ा के वाजिबुल अर्ज के अनुसार टेढ़ा में ठाकुरों का बसना मना है। कुर्मियों और बैसों में तेरह (तेरहा या टेढ़हा) तथा बारा (बारह) गाँवों का बँटवारा हो गया था। जमीदारी के समय जो नर्तकी बारा के नंबरदारों के यहाँ नाचती थी, वह टेढ़ा के नंबरदारों के यहाँ भी नाचती थी और दोनों ही नंबरदार एक दूसरे के यहाँ इस प्रकार के सांस्कृतिक कार्यों में उपस्थित होकर व्यवहार देने अवश्य जाते थे। इस प्रकार इन दोनों वर्गों में तभी से घनिष्ट सख्यभाव रहा है। बैसों में 'पाँचा-दोइया' का बँटवारा भी टेढ़ा के नंबरदारों द्वारा किया गया था अर्थात् बड़े भाई को संपत्ति के तीन भाग तथा छोटे को दो भाग मिलते हैं कारण कि बड़े को अतिथि स्वागत आदि का निर्वाह

करना होता है। अंग्रेजों के विरुद्ध सन् १८५७ के विप्लव में, मेरे परदादा श्री जोधासिंह जी पाटन के श्री ब्रह्मदेव मंदिर के गलियारे के मोड़ पर आती हुई अँग्रेजी फौज की टुकड़ी से मोर्चाबंदी कर भिड़ गये थे और "ग्राम या रामसेना" सहित मार डाले गये थे, उनकी लाशें उसी स्थान के एक कुएँ में भर दी गई थीं। उक्त स्थान चौधरी देवकी नंदन एम०एल०ए० को अपने मकान की नींव खुदवाते समय मिला था, जिसमें बहुत से हड्डियों के ढाँचे-साँचे भरे थे। उक्त कुएँ के पास ही उस समय एक भड़भूजे मुक्ता बाबा' का भाड़ भी था। संयोगवश श्री मुक्ताबाबा १०८ वर्ष की आयु में दिवंगत हुए थे। वे श्री देवकीनंदन जी को उनके पूर्वजों के गदर का इतिहास बतलाया करते थे कारण कि उक्त घटना उनकी आँखों के सामने ही घटित हुई थी - प्रथानुसार 'राम सेना' तब प्रत्येक ग्राम में एक ग्राम रक्षक-दल हुआ करता था, जिसमें प्रत्येक परिवार का एक युवा वीर सदस्य होता था। अंग्रेजी शासन के पूर्व पुलिस संस्था थी ही नहीं। जोधा बाबा उसी दल को लेकर युद्ध में उतरे थे। श्री मुक्ताबाबा भड़भूजे का परिवार पाटन में आज भी है।

उस समय फिरंगियों को देश से मार भगाने की हवा उत्तर प्रदेश के गाँव-गाँव में फैली हुई थी। प्रायः युयुत्सु देशभक्त वीर उनसे सर्वत्र भिड़ रहे थे किंतु फिरंगियों की अनुशासनबद्ध सेना एवं उनकी आधुनिक बंदूकों-तोपों के आगे सभी असहाय और निर्बल थे। फिरंगियों के भय से जहाँ गाँवों के लोग खेतों बनों कीओर भागकर छिप जाते थे, वहीं विद्रोही-परिवार तो सुरक्षा की विशेष चिंता करते थे, अन्यथा वे पेड़ों की डालो में फाँसी पाकर लटक जाते थे या गोली-तोप के मुँह से उड़ जाते थे। गाँव-गाँव अंग्रेजी सेनाओं द्वारा ऐसा ही दमन-चक्र चल रहा था। अस्तु मेरे पारिवारिक जन स्त्री-बच्चे पाटन छोड़कर लोनी नदी के पार जंगल घीनाखेड़ा खोह में जा छिपे थे, जहाँ पासियों के दो चार घर थे। वे सुरक्षात्मक विपत्ति के दिन थे। वहीं भोजन आदि की सामयिक व्यवस्था के लिए उन्होंने लोनी नदी के तटीय भूमि में कुछ कोदों की खेती भी कर ली थी। इसलिए बाद में उन्हें लोग 'कोदहिया' भी कहने लगे, उस समय यह नाम-परिवर्तन आवश्यक भी था। कुछ शांति होने पर ग्राम महरामऊ के महतो जमीदार ने उन्हें अपने गाँव मे बुलाकर बसा लिया ताकि गाँव में कुलीन कनौजिया कुर्मियों का भी एक घर बस जाये। महतो लोग धाकर या धाकड़ (अकुलीन कुर्मी थे। धाकड़ कुर्मी प्रायः दो कुलों (बैसवार, जयसवार) में बंटे होते हैं। बाद में महतो लोगः की वह जमींदारी भी अंग्रेजों द्वारा छीनकर मौराँवा के खत्री तालुकेदारों को दे दी गई थी कारण कि बैसवारे के डौंडियाखेरे के विद्रोही राव राजा रामवख्श सिंह की, पकड़े जाने पर उन्होंने ही उनकी पहचान की थी,. और उन्हें बक्सर गंगाघाट पर ही फाँसी दे दी गई थी। पाटन का भी कुछ चौथाई भाग अंग्रेजों से मिल जाने वाले लोगों को दे दिया गया था, जो आज चौथिया चौधरी कहलाते हैं।

बैसवारे क्षेत्र का यह विप्लव भी उत्तरभारत के १८५७ के अँग्रेजों के विरुद्ध विप्लव का अंग था। बैसवारा क्षेत्र में शंकरपुर के राना बेनीमाधवसिंह ने अँग्रेजों

के विरुद्ध डौंड़ियाखेड़ा (बक्सर), सेमरी और पुरवा आदि कई स्थानों पर अपनी शक्ति भर छोटी लड़ाइयाँ लड़ी थीं। राना बेनीमाधवसिंह प्रतिष्ठित हिन्दुवादी जनप्रिय योद्धा थे, उनके पीछे जन बल था। उनका सेनापति हीरू-वीरू नामक पासी था जो पासियों की एक विकट टुकड़ी उनकी सेना में रखता था। उनके संघर्ष में डौंड़िया खेड़ा के राव रामवख्श सिंह तथा खागा (फतेहपुर) के श्री दरयावसिंह सहयोगी थे, किन्तु राव क्रूर और हठवादी स्वभाव के थे, इसलिए उतने जनप्रिय नहीं थे। डौड़ियाखेड़ा में पराजित होकर राव रामवख्श सिंह अपनी गढ़ी ससान में भाग आये और वहीं अपने अस्त्र-शस्त्र-वस्त्राभूषण कवच आदि अपने राजवैद्य श्री रमाकांत द्विवेदी (ससान) के दादा लोगों को सौंपकर साधु वेश में कालाकांकर-प्रयाग की ओर निकल गये थे। राना बेनी माधवसिंह रणजीत·पुरवा के समीप विल्लेसुर महादेव मंदिर के पीछे के बिलरुआ ऊसर के ढाकवन में ब्रिगेडियर इवली द्वारा रायबरेली को भेजी जाने वाली रसद को लूटते हुए सई नदी को पार कर बछराँवा पहुँचे थे। बछराँवा के ६२ गाँवों के राजा श्री आनंदशरण जी कुर्मी (वर्तमान) के पूर्वजों के यहाँ एक रात ठहरे थे, उनके पास भी दो हजार नियमित फौज रहती थी। उनके निर्देशन पर वे अतरौलिया राज्य (फैजाबाद) के कुर्मी राजा दर्शनसिंह 'गालिबजंग' '(सेवानिवृत सेनापति नवाब लखनऊ) तथा उनके सुपुत्र कुँवर जैलालसिंह (उपसेनापति) बेगम हजरत महल तथा श्री बिरजिस कदर के साथ मिल गये थे। बछराँवा में खोज करने पर भी राना बेनीमाधवसिंह का पता अँग्रेजों को नहीं मिला। इस अपराध के संदेह में बछराँवा का उक्त ताल्लुका भी अँग्रेजों ने छीन लिया था। बछराँवा के उक्त पुराने जमींदार श्री आनंदशरण जी के कई हाईकोर्ट के मुकदमें उसके उपलब्ध प्रमाण हैं। राजा कुर्री सुदौली का भेंट दिया हुआ शाही दरवाजा आज भी उनके घर में लगा हुआ है। अवध के सेनापति राजा जैलाल सिंह के अँग्रेज-विद्रोही होने के कारण उत्तर प्रदेश के लगभग सारे कुर्मी राज्य अंग्रेजों द्वारा छीनकर अपने खैरख्वाहों के दे दिये गये।

रंजीत पुरवा में लार्ड क्लाइड ब्रिगेडियर इवली के साथ २६ नवंबर १८५७ को पहुँचकर आज के शारदा नहर के टीकर वाले पुल के सामने ऊसर में (वहाँ पहले शारदा नहर नहीं थी) नीम के दो बड़े पेड़ों के आस-पास डेरा डालकर ठहरा था, जब मैं मिडिल स्कूल में पढ़ता था उस समय वे दोनों पेड़ वर्तमान थे : श्री पिता जी ने उक्त स्थान के संबंध में मुझे बतलाया था। यहीं इसी दिशा से उसने राव रामवख्शसिंह की पारिवारिक गढ़ी, पुरवा को ढहाया था तथा अपनी सेना का एक दस्ता, खागा (फतेहपुर) की ओर तथा अन्य रसद सहित रायबरेली की ओर भेजा था। रायबरेली की ओर जाने वाली रसद उक्त बिलरुवा के ऊसर ढाक वन में विद्रोहियो द्वारा लूटकर नष्ट कर दी गई थी जिसके २८ रक्षक अँग्रेज मार डाले गये थे तथा उनके शव पास ही पूरनखेड़ा के 'दिकृता' तालाब में डाल दिये गये थे। यह समस्त वृतांत मुझे मेरे पिता जी ने बतलाया था कारण कि उनके बाल्यकाल में नवाबी फौजों और गदर काल के अनेक

नवाबी सैनिक-व्यक्ति गाँव में जीवित थे जो उन्हें उस समय की घटनायें सुनाया करते थे। बैसवारे क्षेत्र में प्रचलित एक सुप्रसिद्ध अप्रतिम ऐतिहासिक गीत भी इस संबंध में विशिष्ट प्रामाणिक है-

अवध माँ राना भयो मरदाना।
पहिलि लड़ाई भै बक्सर माँ, सेमरी भा मैदाना,
हुआँ का धावा भा पुरवा माँ, देखि लाट घबराना,
नक्की मिले, मानसिंह मिलिगे, मिल्यो सुदर्शन काना,
क्षत्रियवंश एकु ना मिलिहै, जब लग घट में प्राना।
भाई-बंधु औ कुटुम कबीला, सबका करौं सलामा।
तुम तौ जाय मिल्यौ गोरन ते हमका हैं भगवाना।
हाथ माँ भाला बगल सिरोही, घोड़ चलै मस्ताना;
कहै दुलारे सुनु मेरे प्यारे, उत्तर कियो पयाना।
अवध माँ - - - - - — - -

मेरे परिवार में प्रायः प्रत्येक पीढ़ी में प्रतापी यशस्वी पुरुष उत्पन्न होते आये हैं। हमारे छक्कीलाल काका जी अपने समय में इटावा-भिंड के सर्वश्रेष्ठ घी-चावल के व्यापारी थे। ग्वालियर के शिंदिया महाराज उन्हें विशेष मान देते थे और प्रतिमास उन्हें दरबार में बुलवाते, साथ ही भोजन करते थे- उनकी भेंट की हुई तलवार काकाजी के परिवार में आज भी है।

हमारे परबाबा पूरनसिंह जी अँग्रेजी फौज में जमादार पद पर थे, कुछ लिखना-पढ़ना जानते थे, इसलिए वे फौज से निकालकर अंग्रेज शासन द्वारा स्थापित पुलिस-विभाग में लाये गये थे, क्योंकि इस विभाग में पढ़े-लिखे लोगों की आवश्यकता थी किंतु उन दिनों पढ़े लिखे लोग थे ही नहीं। मेरे बालासिंह जी बाबा ने पुरवा के समीप थोड़ी सी जमीदारी पुनः खरीदी थी। वे संगीतप्रेमी रईसाना प्रकृति के थे, वेश्याओं-भाँडों के नाच-गायन-समारोह करवाते रहते थे। हमारे पिता जी बैठक के ठुमरी, टप्पा फाग की लेज आदि के शास्त्रीय-ध्वनि गायक थे किंतु वे आर्य समाजी पहलवान, विवेकशील तथा दबंग लठैत किस्म के साहसी वीरधर्मा व्यक्ति थे। वे जनसेवा के कार्यों में विशेष संलग्न रहते थे, किसी गुंडे-बदमाश को वे सहन नहीं करते थे, उसे पीट-पीटकर ठीक कर देते थे। वे अत्यंत ही श्रमशील कर्मठ कलाकार भी थे, गाँव में सबसे पहला अपना पक्का मकान उन्होंने अपने हाथों से बनाया था, जिसमें गाँव के कुम्हारों के लड़कों को कारीगरी का काम सिखाया था। उसके किवाड़े आदि अपने ही हाथों से लगाया था। मेरे बड़े भाई श्री रामकिशोर उर्फ पट्टे भय्या जन्मजात इंजीनियर और अत्यंत ही साहसी व्यक्ति थे, बी० ए० (प्रथम) तक रेड्डी के हाथों वीरपदक एवं प्रमाणपत्र मिला था। उनकी श्रीमती रानी बाला जी वर्मा रायपुर (मध्य प्रदेश) में शासकीय एम०एड० कालेज की प्राचार्या थीं। उनका ज्येष्ठ पुत्र अनुराग सिंह भिलाई में इंजीनियर हैं तथा उसकी पत्नी जबलपुर निवासी

गौर कुर्मी परिवार (नेपानगर) के एक इंजीनियर की सुपुत्री एवं एम०एस०सी है । पुत्री अनीता एम० डी० (मेडिकल) है तथा इटारसी के एक इंजीनियर से विवाहित है । छोटा लड़का आलोकसिंह एम०बी०बी०एस है और रायपुर में ही डाक्टर है । मेरे मझले भाई राममनोहर सिंह गान-विद्या के प्रेमी और हारमोनियम बनाने और बेचने का कार्य करते हैं : उनका मँझला लड़का श्री दिनेश सिंह लखनऊ मेडिकल कालेज में एम० डी छात्र है तथा उसकी पत्नी मेधावी एम०एस०सी० है । मेरी बेटी स्वयंप्रभा कानपुर में है मेरे दामाद शासकीय होमियोपैथी कालेज (शासकीय) में डाक्टर हैं । मेरा पुत्र श्री ओम प्रकाश सिंह बी० एस०सी, डी० एच०बी० (म०प्र०) है जो घर पर ही डाक्टरी करता है तथा कृषि संभालता है, निरक्षर भट्टाचार्य मेरी सहधर्मिणी श्रीमती चन्दा रानी कृषि, गोधन और गृह-व्यवस्था की प्राचार्या हैं । अपने संबंध में मैं क्या लिखूँ मेरी बौद्धिक जीवनी, शिक्षा-कविता और समालोचना आदि की लेखनी । यह समस्त पारिवारिक वृत्तान्त उन शोध-दृष्टि वाले अध्येताओं के लिए दे रहा हूँ, जिन्हें लेखकों के संबंध में जानकारी के लिए प्रायः भटकना पड़ता है । जैसा कि मेरे ऊपर लघु-शोध प्रबंध लेखक एम० ए० छात्रों के लिए मुझे खोजना पड़ा था । इसके अतिरिक्त यहाँ मेरा कोई अन्य उद्देश्य नहीं है पाठक क्षमा करेंगे ।

चिर-वांक्षित 'छत्रसाल' महाकाव्य की रचना के साथ मेरा कविकर्म व लेखन मार्ग लगभग संपूर्ण हो जाता है - गाँव में विद्युत प्रकाश न मिलने के कारण लिखना-पढ़ना भी कठिन है । वय भी बाधित करती है । पुनः लेखन के उपरांत प्रकाशन तो अति दुस्तर कार्य है : इस मँहगाई में रोजी रोटी का प्रश्न ही कष्ट साध्य है फिर लिखकर ही क्या होगा । जीवन की सभी भूमिकायें ईश्वर और काल-सापेक्ष होती हैं । प्रस्तुत रचना का श्रेय जनपद उन्नाव के रा० स्व० से० संघ के प्रचारक श्री महिरजध्वजसिंह को जाता है, मैं अपने प्रति उनके अगाध स्नेह के लिए अनुगृहीत हूँ : मेरे सहपाठी एवं जिला कार्यवाह श्री रामगोविन्द सिंह जी चौहान व विभाग प्रचारक श्री रामनरेश जी सदैव मेरे उत्साह संवर्द्धक सहयोगी बने रहते हैं, उन्हें मैं कौन-सा धन्यवाद दूं, उनका आत्मिक सहयोग तो प्रस्तुत रचना में ही घुला हुआ है ।

इसके साथ ही मैं अपने परमस्नेही डॉ० यतीन्द्र नाथ तिवारी (प्राचार्य, अर्मापुर कालेज, कानपुर, डॉ० शिवशंकर त्रिवेदी (अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, अर्मापुर कालेज), डॉ० दिनेश तिवारी (अध्यक्ष संस्कृत विभाग अर्मापुर कालेज), डॉ० कन्हैयालाल जी (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, एस० डी० कालेज कानपुर) डॉ० लक्ष्मी कान्त पाण्डेय(पी० पी० एन० कालेज, कानपुर), डॉ० उमेश मिश्र, डॉ० कैलाश मिश्र, डॉ० प्रतीक मिश्र (डी०ए०वी०कालेज कानपुर) डॉ० रामनरेश यादव (प्राचार्य दयानंद महाविद्यालय, बछरॉवा, रायबरेली) तथा श्री शिवमोहन सिंह (प्राचार्य जवाहरलाल नेहरू कालेज, बाराबंकी) डॉ० अयोध्या प्रसाद (डीन, सी० एस० विश्वविद्यालय, कानपुर) , डॉ० ब्रह्मदत्त वर्मा (स्पोर्ट्स कालेज, लखनऊ), डॉ० सूर्य

प्रकाश जी दीक्षित (लखनऊ विश्वविद्यालय) डॉ० सी० पी० सिंह, डॉ० एस० पी० सिंह (उन्नाव), श्री कृपाशंकर सिंह एडवोकेट, विधायक, उन्नाव, डॉ० अशोक दुबे, पुरवा, डॉ० रामकुमार अवस्थी, पुरवा आदि मेरे सहृदय स्नेही एवं सदैव उत्साहसंवर्द्धक व्यक्ति रहे हैं : अतएव उनका आभार तो सदैव मानना ही होगा। श्री चन्द्रपाल वर्मा, श्री इन्द्रपाल सिंह, श्री सूरजपाल सिंह, आदि अपने प्रिय भतीजों नाती श्री मुकेश लाला का भी स्नेहपूर्ण स्मरण यहाँ अपेक्षित है, जिनके सहयोग से प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित होकर राष्ट्र प्रेमी पाठकों की सेवा में पहुँच रही है। माननीय श्री श्याम बिहारी मिश्र (सांसद) तथा उनके प्रिय सुपुत्र श्री किशन बाबू का स्नेहपूर्ण सौजन्य रचना में ही बिंधा है।

ग्राम व पत्रालय- महरामऊ
त्रिपुरारिपुर, उन्नाव

डॉ० रामकुमार सिंह
एम० ए० (राजनीति, हिन्दी), एल० टी०
पी-एच० डी०, डी० लिट्०

(१) आसुरी मुगल-युग

जिन बर्बर,छल-संघातों से कर नैश-आक्रमण बाबर ने;
सत्ता के पग थे जमा लिए, राणा साँगा हारे रण में
वह धर्मयुद्ध की बात रही, इस सभ्य धर्म के भारत में;
राजा करता क्षति पूर्ति; कृषक की कृषि-क्षति जो होती रण में।
दिन में करते जो युद्ध, परस्पर संध्या में मिलते-जुलते
आहूत-युद्ध करते सन्मुख,रजनी में जो सुख से सोते,
बर्बर छल-बल क्रूरता कपट धूर्तता यवन- रणनीति रही;
आपसी फूट महिपालों की, यवनों की बनती जीत रही।
नय नीति-सिद्ध थी युद्ध-कला, अनुपम साहस वीरत्व रहा,
थी भिन्न यवन-रणनीति किंतु, छल ही जिसका अस्तित्व रहा।
नर वीर न समझे भारत के,छलियों की इन छलनाओं को,
वे परम्परा के भक्त, मान देते सुनीति कलनाओं को;
अतएव पराजित हुआ राष्ट्र, अकबर की धूर्त कुचालों से,
उस कपटनीति से, और मूर्ख उन रजपूती करवालों से
उनको प्यारे निज प्राण रहे, हो दंभ-स्वार्थ के वशीभूत,
निज धर्म कर्म संस्कृति-स्वदेश के नाशक जो कारणीभूत।
बन गये हिंस्र-पशु सिंह, हिन्दुन्जन का करने आखेट लगे,
मुगलों के संबंधी गुलाम, करने सिज़दा समवेत लगे
जो जुड़ न सके भारत-गौरव, निज वीर बंधुओं से मानी,
जो स्वार्थ गुलामी के सुभक्त, माँ के कुपूत जो अपमानी;
ओ रे ! कलंक भू के, लज्जित तुमसे माता का दूध हुआ,
ओ नाम नर्क के तुमसे ही भारत का गौरव लुप्त हुआ।
सोचा न कभी हिन्दू-जन को, गोधन,मंदिर-विध्वंस हुए
सब लुटे ग्राम-धन बालायें, नारी-सतीत्व शुचि भ्रंश हुए
हो गया भ्रष्ट सब धर्म-देश संस्कृति का हिमगिरि बिखर गया
मैली पावन-जाह्नवी, दासता- संकट,भारत- सिहर गया।
जो शेष मातृ-भू के सुवीर, लड़-लड़ वे रण बाँकुरे समर !
सो गए धरा पर लोहू से, इतिहासों मे लिख नाम अमर।
ओ री लेखनी ! सजग कर ले, स्मरण उन्हीं नरवीरों का
प्रति शब्द-शब्द में नमन करे, उनवीर भुजा, असि तीरों का
यह समय सजग कर युवजन को, जागृत कर भूषण की वाणी
शिव-छत्रसाल से वीर उठें, इस धर्म-धरा पर नर नामी

वे गौरव के गुरु हर गोविंद, गोविन्दसिंह त्यागी मानी
जयबोल उन्हीं नरवीरों की, हो सजग लेखनी अभिमानी ।
यदि तू न समय पहचान सकी, यह देश तुझे धिक्कारेगा
आह्वान युवा-बल कर न सकी तो देश कौन उद्धारेगा ?

यदि तू न देख इतिहास सकी, फिर कौन उसे पढ़ पायेगा ?
सोये हिन्दू-जन भारत को, फिर कैसे कौन जगायेगा ?
कवि नये नयी कविता लिखते, पाखंडित करते वाणी को,
निज राष्ट्र-शक्ति-उन्मेष विरत, करते प्रतिभा-क्षत्राणी को ।

अपना कर्तव्य निबाह सकी, यदि नहीं कौन दुलरायेगा ?
भारत-संकट की घड़ियों को, फिर कौन कहो ललकारेगा
उठ अंधकार से युद्ध-हेतु, जागे भारत का मार्तंड,
आसुरी शक्ति कर क्षार-क्षार जागे भारत का बल प्रचंड ।

अकबर ने जैसे सुदृढ़ किया, क्रमशः निज मुगली सत्ता को ।
उसकी उदारता तथाकथित, घातक थी राष्ट्र इयत्ता को ।
हिन्दू प्रति हिन्दू लड़वाकर, तोड़ा हिन्दू-जन-सत्ता को,
राजपूत स्त्रियां हरम भरा, आश्रय क्या राष्ट्र महत्ता को ?

प्रच्छन्न हिन्दुजन का विरोध, उसका उद्योग सचेष्ट रहा
इस्लामी प्राण-प्रतिष्ठा ही, उसका नैतिक उद्देश्य रहा ।
शोषण कर हिन्दू-जनता का, वैभव-विलास के जाम सजे
वे इन्द्रभवन-से हरम बने, ठाटों के थे दरबार सजे ।

उनके कर्मी, अधिकारीगण, खानसामें हों या हों अमीर,
आश्रित राजा-उमराव लूट-ऐश्वर्यों के मानी लकीर ।
सर्वत्र भोग वैभव-विलास का वातावरण-वितान तना
सुखभोग, सुरा-सुंदरी नृत्य, सब छूम छनन का रास बना

दुर्भाग्यपूर्ण जीवन रोतीं, हिन्दू -कुमारियाँ हरमों में,
मीनाबाज़ार था सजा हुआ, भोगी अकबर-आचरणों में,
बूढ़ी कुटनियाँ फँसातीं थीं, भोली ललनाएँ गली-गली
बेवश हिन्दू-सिर झुका हुआ, हिन्दू प्रति हिन्दू हुआ छली ।

जातियाँ-पाँतियाँ, ऊँचनीच के धर्मभेद के भाव अमित,
ले डूबे राष्ट्र-इयत्ता को, सत्ता-स्वतंत्रता पूर्ण-दमित ।
राणा-प्रताप सहयोगी ले, जीवनभर लड़-लड़ बिखर गये,
रजपूतों को ही देशमुक्ति के भाव, अरे । यों अखर गये ?

पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, अहं, कुल-जाति-दंभ की फूटों ने
खा लिया राष्ट्र-मर्यादा को, उन क्रूर विदेशी लूटों ने ।
धन, धर्म देश सब नगर -ग्राम, असहाय बालनारियाँ लुटीं
निरुपाय भारतीवीर-रक्त बह गया, हरित क्यारियाँ लुटीं

राजा थे सारे धर्म-हीन, अविवेकी और अहंकारी,
वे राष्ट्र-धर्म से शून्य, शौर्यहत, रहे मात्र भोगाचारी ।
अपनों से केवल तने रहे, पर के तलवे चाटते रहे,
ओ मूर्खों ! खड्ग तुम्हारे ही, निज राष्ट्र-अंग काटते रहे ।
अच्छा होता निज अंग काट, यदि धर स्वदेश के चरणों पर
कर लेते अपना जन्म-धन्य, कर इतिहासों में नाम अमर
हो गया पराजित धर्म-देश, अपनी स्वार्थी करतूतों से ।
संगठन-हीन जी सकता क्या, कोई समाज यों बातों से ।
जी सकते वे, जो स्वाभिमान पर आँच नहीं सह सकते हैं
जो मरना नहीं जानते, कब सम्मान सहित जी सकते हैं ?
हो दमित, आक्रमित पराजयों से, टूट गया सारा स्वदेश;
निज स्वाभिमान से शून्य, मुरझ बिखरा हिन्दू-जीवन-विशेष।
वे परोपजीवी बंभन आये, रावणी लिए निज संस्कार;
ऋषि-ब्राह्मण-धर्म-विलुप्त, ज्ञान-पथ में घिर आया अंधकार ।
गुण-कर्मवाद कब ? कहाँ ? अरे ! वह जातिवाद सिद्धांत बना ?
वह अर्थ-तंत्र का कर्म रूप, क्यों छुआ-छूत कटुतंत्र बना ?
वह ऊँच-नीच का दुर्ग बना, भारत-संगठन-विहीन किया ।
ओ नीच बंभनों ! तुमने ही, भारत-माता का खून किया ।
विद्या-विहीन सारा-समाज, कटु जाति-भेद से बिखर, क्षीण ।
अविवेकी बाँभन-स्वार्थों से, हो गया वेद का ज्ञान शून्य ।
स्त्री-शूद्रो न अधीयताम्'- का सूत्र गढ़ा, था मूढ़ कौन ?
शारद-स्त्री, श्रम-शूद्र-कला, का मूल्यांकन कर सका जो न ?
श्रम-शूद्र समाज-कला-ज्ञानी, विदुषी माता कुल-ज्ञान-ज्योति
मूर्खों ! वेदों में नारी के, क्यों नहीं पढ़े वे मंत्र-पूत ।
सम्राट बनाकर अकबर को, तुमने बीघा-विस्वा धारे ।
निष्कर्मी, वृषली, कृपण, भिक्षु, स्वार्थी, लोभी, कपटी न्यारे ।
शुचि धर्म-ज्ञान से हीन, अशिक्षित मत-पंथों से घिर विशेष ।
आचार हीन, उत्साह-हीन, हो गया मृतक-सा पूर्ण देश ।
'कोउ नृप होई हमें का हानी'- सूत्र रहे रटते सारे,
हो राष्ट्र-धर्म से विमुख, कायरों ने माला पर कर-धारे ।
हो धर्म-भीरु ज्यों बैठ गया, अति निर्बल, शासित, पराधीन,
जग-नश्वरता का घोष लिए, धर्माचारी सब दिशा-हीन ।
वह दिव्य ब्रह्म-भावना मिटी, रह गया धर्म अब अर्थ-काम ।
यमुना-तट पर नाचते कृष्ण, तो सरयू-तट नाचते राम ।
थे अन्य जटा-श्मश्रु बढ़ा, तन-नग्न साधु-भिक्षाटन-रत;
बनकर समाज के पिस्सू जो, कर गये देश-भू को चौपट ।

श्रम से न रहा संबंध, उदर-पोषण-हित फिरते द्वारों पर,
हो रहा, धर्म-धन-देश नष्ट, चिंता न राष्ट्र की हारों पर ।
प्रभु-सेवा बनी वित्त-सेवा, ऐसा विचित्र-संयोग रहा,
मठ बाँधे बैठे मठाधीश, जन-शोषण, रसिक,-नियोग रहा ।

क्या कहें आज ? सोचो प्यारे ! मालाधारी करतूतों को;
जग माया-मिथ्या कह प्यारे ! खोया स्वराष्ट्र की धरती को ।
यों ही पहले दाहिर युग में, बौद्धों की घोर अहिंसा में ।
हो गया म्लेच्छ था सिंधु देश, झुक-झुक इस्लामी-हिंसा में ।

बाँभन-ठाकुर अतिचारों से हो दलित दुखी अति दुखी-दीन
परधर्मी धर्म ठाकुरों के शरणागत सब हो गये दीन ।
जिन धर्म-बंधुओं को सदैव, कह नीच-शूद्र हो दुरियाते,
उन पापों का परिणाम, झेलनी पड़ी विधर्मी की लातें ।

'मत छू', 'मत खा', मतपी' वाली वह दृष्टि आज क्यों रोती है
बिखरा समाज, पर शुद्ध-बुद्धि क्यों नहीं हिन्दु की होती है ?
क्या होता आज स्वराष्ट्र, संगठन की यदि हुंकारें होतीं
माला के बदले हाथों में, यदि नंगी तलवारें होतीं ?

उस जाति धर्म-पथ-भेदों से निज शक्ति बिखर विनशाती है ।
ओ युग-धर्मी हिन्दू सोचो- "संगठन शक्ति की थाती है ।"
गोधन जो अर्थाधार राष्ट्र का, निर्मम हत्या होती है
भूखी खेतों की मिट्टी क्यों ? हल की मुठिया क्यों रोती है ?

नारी, जो राष्ट्राधार धर्म-संस्कृति-समाज की होती है;
अबला वह अतिचारी वश में, निरुपाय कहो क्यों रोती है ?
संजीवित जागृत करता जो, निज राष्ट्र-प्राण, साहित्य वही ।
वह वाणी क्या वाणी, जिसमें जीवन-स्वराष्ट्र का सत्य नहीं !

आया जो इस्लामी कुकाल, वाणी स्वराष्ट्र की बिखर गयी;
नत-मस्तक हिन्दू हुआ, पराजय की पीड़ा दिक्-व्याप्त हुई ।
दिग्भ्रांत व्यथित सारा समाज, जीवन के उच्चादर्श मिटे ।
युग की चेतना सजग करने वाले वाणी के घोष मिटे

युग-प्रेरक जो भविष्य दृष्टा, कवि के भावों के मान मिटे ।
नव-जीवन-दायी राष्ट्र-प्राण के चिंतन के क्षण-याम मिटे ।
जो अन्न-पान के आश्रय-हित भिक्षुणि थी राज-समाजों में
तेजस्विता-पराक्रम संभव कब था उन श्रृंगारिक साजों में ।

राजे-रजवाड़े या रईस आश्रयदाता जो कवियों के,
वे शौर्य-हीन, भोगी-कामी, कवि बने दास उन रुचियों के ।
भीषण इस्लामी घातों से संपूर्ण राष्ट्र-संकटापन्न ।
धन-धर्म मिट रहा था, बलात् कर नष्ट हिन्दु-जन-मान-बिंदु ।

तोड़ते अर्थ-बल हिन्दू का, कर-आरोपित कितने भारी ।
क्रूरतापूर्ण बध, अपहृत हो, लांछित पग-पग हिन्दूनारी ।
सिर पर मुस्लिम-तलवार, धर्म-संस्कृति पर संकट पर संकट
कटु-दमन-चक्र, पीड़ा-शोषण, जीवन-समाज सब क्षत-विक्षत ।

उस ओर न कोई ध्यान हुआ, भिक्षुक उदरार्थी कवियों का ।
अधरामृत सुरा-सुंदरी का, घुँघरू-नर्तन किशोरियों का ।
सब काम-भोग की रीति बिंधे, रचते नायक-नायिका रूप ।
'कलि कवि-राजन' की कथा वही, कलियुग के जैसे रहे भूप ।

गुह्यांगों में डूबे सारे, जीवन जीते जो ओज-शून्य,
लेखनी हुई दायित्व-हीन, जागृत-समाज को करे कौन ?
जो आत्म-तेज-बल-हीन, क्षीण, होंगे उदात्त वे चरित कौन
जिनमें न चरितबल, अन्यायों का कर सकते प्रतिरोध कौन ?

आये थे अन्य पराभव-क्षण, ऐतिहासिक भारत-जीवन में
पर नैतिक उच्चादर्श त्याग, ऐसा न पतन था उस पल में ।
पराकाष्ठा घोर-पराभव की वह थी, यह कहना होगा;
जब कामोपासन लीन, देश को देख, मौन रहना होगा ।

हिन्दू-विरोध की नीति-बढ़ी, क्रमशः मुगली अनुशासन में ;
अकबर से भी बढ़ जहाँगीर में, हिन्दू-द्वेष-कुशासन में ।
उसकी विलासिता जाम बढ़े, उस अनाचार का राज बढ़ा,
हिंदू-मंदिर ढह चले, सुदृढ़ ज्यों-ज्यों मुगली-साम्राज्य बढ़ा ।

प्रतिकार-हेतु जो शीश उठा, उसको तत्क्षण ही काट दिया ।
सिख-गुरु अर्जुन बध हुआ, हिन्दु-लोहू से भूतल पाट दिया ।
गोहत्या अकबर ने रोकी, बीरबल-बुद्धि-आयासों में,
पर शाहजहाँ ने फेरदिया, पानी उन दिव्य-प्रयासों में ।

प्रचलित गो-हत्या हुई पुनः, मंदिर-गुरुद्वारे टूट चले ;
आगे नव-मंदिर बनें नहीं, राजाज्ञा ले यमदूत चले ।
फलतः जन-भारत सजग हुआ, हिन्दू-आवेश प्रबुद्ध हुआ,
प्रच्छन्न-विरोध-भावना ले, हिन्दू-मन जैसे क्षुब्ध हुआ।

गोमाता ही आधार रही, कृषि-भारत जीवन-वैभव की,
सुख-स्वास्थ्य अर्थ-आधार रही, पावन भारत की धरती की
गोबर-संकट, कृषि पर संकट, जीवन पर संकट पर संकट ।
सोचो-समझो ओ देशबाल ! क्यों बनी समस्या महाविकट !

वह क्रूर आसुरी-धर्म, जहाँ केवल मानव-पशु-हत्यारे ।
इस्लामी जन ही मात्र मनुज; काफिर जो अन्य मनुज सारे ।
बध उनका कर देना उत्तम, चाहे जैसे छल-घातों से
ऐसी शिक्षायें दे विषाक्त, जो धर्मग्रंथ आयातों से ।[क१]

नारी भोग्या ही मात्र जहाँ, माता-पुत्री का मान नहीं;[ख२]
पशु-मात्र सभी हैं भोज्य, जहाँ करुणा या दया-विधान नहीं [३]
धार्मिक कट्टरता-मात्र धर्म, असहिष्णु घृणा-आधार रही;
परधर्मी-जन का दमन-मात्र, नीतियाँ मार्ग-निर्धार रहीं ।

इस अंध-धर्मिता ने जग के, कितने सुराष्ट्र कर दिये नष्ट ।
हिंसा-आधारित आसुरता, कर रही आह वह विश्व -भ्रष्ट ।
जाने कब आयेगा भू पर वह अवतारी बलवान वीर,
जो दूर करेगा भूतल की यह विषम यंत्रणा महापीर ?

औरंगजेब साक्षात्, आसुरी यातुधान अवतार हुआ ।
निर्बल निरीह हिन्दू-जन का, निर्ममतम हा ! संहार हुआ ।
असहिष्णुता ही आधार बनी औरंगजेब की शाही की ।
लग गया क्रूरता-राहु, राष्ट्र-जीवन की घोर तबाही की ।

उसकी आँखों में तो, हिन्दू होना ही ज्यों अपराध रहा;
इस्लामीकरण मात्र जैसे, उसके जीवन का साध्य रहा
कर त्यक्त समन्वय 'दारा' का, हिन्दू-दमनार्थ सचेष्ट हुआ,
नियमित कर मुस्लिम कट्टरता, गो-वध, हिन्दू-वध इष्ट हुआ ।

वर्खास्त 'हिन्दु-दीवान'हुए, निर्वासित 'हिन्दू-पेशकार',
मुस्लिम अधिकारी नियत, हिंदुओं पर करने को अनाचार ।
'मुहतसिब' नियत निर्देशक, जनता को कुरान-पथ अपनाने;
इस्लामी दीक्षा-हित तत्पर, जो हिन्दु-शीश पर असिताने ।

क१ मुसलमानों को चाहिए कि मुसलमानों को छोड़कर काफिरों को अपना दोस्त न बनायें और जो वैसा करेगा तो उससे और अल्लाह से कुछ वास्ता नहीं । मगर किसी तरह पर उनसे बचना चाहो (मुसलहतन) तो जायज है । (२८) कु०सू० अल्ल इमरान रु०३ ।

क२- जो लोग अल्लाह और उसके पैगम्बर से लड़ने और फसाद की गरज से मुल्क में दौड़े फिरते हैं उसकी सजा तो यही है कि वे मार डाले जायें या उनको सूली दे दी जाये ।या उनके हाथ पाँव उल्टे काट दिये जायें - दायाँ हाथ बांया पैर या बांया हाथ , दायाँ पैर, या उनको देश निकाला दे दिया जाये ।

३- काफिरों को दोस्त मत बनाओ। (५६) कु० सू० मायदा पा०६ रु० ५

४- फिर अदब के महीने निकल जावें तो मुशरिकों को जहाँ पाओ , कत्ल करो। उनको घेर लोऔर हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो , (५) ऐ पैगम्बर , काफिरों और मुनाफिकों से जेहाद करो और उन पर सख्ती करो और उनका ठिकाना नरक है । ७३ । मुसलमानों , अपने आस-पास के काफिरों से लड़ो । और चाहिये कि वह तुमसे सख्ती मालूम करे । १२३ रु० १ व१० कु० तौबा १० ।

किताब वालों ! जो न खुदा को मानते हैं और न कयामत को और न अल्लाह को और न उसके पैगंबर की हराम की हुई चीजों को हराम समझते हैं और न सच्चे दीन को मानते हैं , इनसे लड़ो यहाँ तक कि जलील होकर (अपने हाथ) जजिया दे।२९ कु० सू० तौबा का १०रु० ४ ।

दण्डित करते उनको, जो निंदक इस्लाम विरोधी थे ।
जो देव-मंदिरों के पोषक, हिंसा के जो प्रतिरोधी थे ।
कितने सूफी-सरमद मारे, काटे शिर अमित शियाओं के,
संस्कृति का अंतर फटा, कटे सिर अगणित जब दाराओं के।

था प्रमुख कार्य मुहतजिबों का, हिंदू-मंदिर गिरवा देना ।
मूर्तियाँ बिखंडित कर, मस्जिद की सीढ़ी में चुनवा देना ।
चिंतामणि-मंदिर ढहा, अहमदाबादी मस्जिद निर्माण हुई ।
शिवमठ ढह गये उड़ीसा के, मस्जिद-मीनारें खड़ी हुई ।

मथुरा इस्लामाबाद बनी, केशव मंदिर कर पूर्ण ध्वस्त,
वह रत्न-जटित जो मूर्ति,बेगमी-मस्जिद-सीढ़ी-जड़ समस्त ।
कुचलें जिसको नित मुसलमान नंगे पग या निज जूतों से ।
हिन्दू-मन को यों ठेस लगा, थे पुलकित निज करतूतों से ।

काशी का विश्वनाथ मंदिर, ढह गया बनी मस्जिद विशाल ;
यों औरँगजेबी धधक रही, हिन्दूजनकी बन महाकाल ।
उज्जैन, जोधपुर, उदयपुर, गोलकुंडा, बीजापुर, महाराष्ट्र ।
मूर्तियाँ तोड़ गाड़ियाँ लदी, सर्वत्र हुए मंदिर विनष्ट ।

करते हिन्दू-मन अपमानित, जामा मस्जिद सीढ़ी में जड़ ।
लग गई बंदिशे भारत में, पर्वों होली-दीवाली पर ।
मंदिर जाना भी मना किया, हिन्दू-विद्यालय बंद किए,
पूजार्चन, कर्मकाण्ड, तीर्थ-यात्राओं पर प्रतिबंध हुए ।

योजना शक्ति की, सत्ता की, भारत इस्लाम बनाने की ।
आधार कुरान-कृपाण रही, धर्मांतर के अभियानों की ।
रजपूत मात्र चल सकते थे, पालकी हाथियों घोड़ों पर,
रख सकते या चल सकते थे, हथियार सहित रण-अश्वों पर ।

वर्जित थे अन्य हिंदु, कोई हथियार नहीं रख सकते थे,
पालकी-हाथियों-घोड़ों पर, वे कहीं नहीं चल सकते थे ।
जिम्मी-जन पर जजिया छाया, भारी कुरान-आदेशों से,
रजपूत मात्र ही शेष रहे, कर-मुक्त शाह-निर्देशों से ।

संबंधी थे, अतएव उन्हें सुविधा का दान विशेष मिला,
हिन्दू का स्वत्व मिटाने को, उनको शासन-निर्देश मिला
इतिहास साक्षी है देखो, थूको उन नीच कुपूतों को,
अत्याचारी वे सिंह बने, थूको उनकी करतूतों को ।

विक्रय-कर दूना हुआ, प्रपीड़ित जो हिन्दू-व्यापारी थे ।
मुस्लिम-व्यापारी मुक्त रहे, कर हिन्दू-जन पर भारी थे ।
सविरोध निवेदन हेतु अस्तु हिन्दू-जन दिल्ली में भारी,
जाते नमाज को, जामा-पथ में मिले प्रार्थना ले सारी;

पर नहीं पसीजा औरँग वह, जजिया-विरोध की सजा दिया,
मँगवाया हस्ति-सैन्य तत्क्षण, हिन्दू-जन को कुचलवा दिया ।
घटना यह दो-दो बार हुई, धर्मातंरण हेतु थे विवशदीन;
चल रहा दुष्ट-धर्मी शासन, थी प्रजा त्रस्त, अति-दुखी-क्षीण ।

सुन्नी मुल्लाओं की तूती थी बोल रही भारत-भू पर,
यज्ञोपवीत फूँकते, शिखायें कटे शीश थे पग-पग पर ।
अत्याचारी साम्राज्य रौंदता सनातनी विश्वासों को ।
रोते थे दुखी हिन्दु-सारे, क्या आश्रय था निश्वासों को ।

अपहरण अमित बालाओं के, थे सरल आह ! वे बलात्कार,
रौंदते हस्ति-पग हिन्दू को, जलती ज्वाला में चीत्कार,
नोचते चिमटियों से तनको, धर अग्नि शलाखें भी तन पर,
मुख में, गुह्यांगों, आँखों में खोंसते, हिन्दु-बध में तत्पर ।

चुन जाते कुछ दीवारों में, कुछ हाथ-पैर कटवा लेते,
कुछ बँधे हस्त-पग डूब-डूब, गंगाजल पी-पी कर मरते ।
कुछ की बोटियाँ बिखर जातीं, टुकड़े-टुकड़े, इस भूतल में
उदरस्थ किया करते, उड़-उड़ वे चील-गिद्ध अपने थल में ।

कुछ शेरों के भोजन बनते, कुछ के शिर पर आरे चलते ।
कुछ हस्ति-शुण्ड-पग के नीचे, सीधे ही लकड़ी-से चिरते ।
नाखूनों में फाँसें ठोंकी,कुछ जन-पथ सूली पर लटके
कुछ हाथ-पाँव की कटी लोथ, पथ में खाती यम के झटके ।

था अकथनीय दुर्दांत-दमन, हिन्दू-जन का यों निस्सहाय,
था शेष न अत्याचार, जिसे सह नहीं रहे थे हिंदु-हाय !
क्या करें, कहाँ जायें, किससे क्या कहें, त्राण-पथ कौन हाय !
इस्लाम-धर्म-स्वीकृति-विकल्प ही शेष रहा केवल उपाय ।

कश्मीरी-पंडित सिख-गुरु की सेवा में खड़े प्रार्थना ले;
गुरु तेगबहादुर गये, आत्म-बलि-गाथा इतिहासों को दे ।
सत्धर्म जहाँ पर जगता है, सुविवेकी प्रभु-चिंतन-विचार;
जिसमें जड़ चेतन प्रति असीम, करुणा ममतामय मधुर प्यार,

पर कटुता विष, वैषम्य, द्वेष, असहिष्णुता अहं औ' अनाचार
वह धर्म कहाँ, आसुरता की संस्कृति ही जिसकी चिराधार ।
उन वीरों का शतशः वंदन जो झेल मरे यातना-दंड;
जिनके बलिदानों से कराह,जागा भारत का बल प्रचंड ।

औरँगजेबी दु:शासन से, अति पीड़ित भारत उग्र हुआ;
विप्लव की हुंकारें गूँजी', जन-भारत मे विद्रोह हुआ ।
अँगड़ाई-धर्म-धरा फिर से, तीखी स्वधर्म की आँच उठी,
निज देश-धर्म की रक्षाहित, तीक्ष्ण तलवारें नाच उठीं ।

उस बालशिवा का तेज लगा, मरहट्टा कुनबी वीर उठे,
कोकिला जाट, सिख-रण बाँके, सतनामी धर्मी शूर उठे;
गुजराती गंगाराम वीर, मालवा-गौड़-रणधीर उठे;
चंपत जागे, बुंदेलखंड के स्वर सब हर-हर बोल उठे !

आसामी दर-फुकंन जागे, जागे सतगुरू गोविन्द सिंह
जय बंदा-वीर बहादुर की, जिसके धनु-शर में बल प्रचंड ।
हर गली-गाँव से निकल-निकल भारत माता के लाल चले
निज धर्म-देश की रक्षाहित ले हिंदूजन करवाल चले ।

ऐसे संकट में जो गरजी, भारत-भूषण भूषणवाणी ।
उत्साहित करते राष्ट्र-प्राण वे 'लाल' और 'सूदन' मानी ।
अपने प्रताप की ओजपूर्ण, तेजस्वी असि-किरणें प्रसार
भक्षण कर डाला वीरों ने, भारत की भू का अंधकार :

नव उदितभास्कर-से जागे, हरते, प्रताप से, अंधकार;
उन भारत-वीरों को सश्रद्ध शतशः वंदन, शत नमस्कार ।



२- बुंदेल खंड

(प्रारंभ ११-८-६३ गुरुवार)

यह हृदय-स्थल शुचि, भारत का, यमुना-गंगा के चरणों पर,
नर्मदा नीरजा के उत्तर, विंध्या-गिरिमाला-अटवी पर ।
झाँसी-जालौन, हमीरपुर, बाँदा, हरियर थल ललितपूर ;
गिरि-वन-खेतों की पलकों पर, सागर-दमोह शुचि जबलपूर ।

पश्चिम चंबल घाटियाँ अगम, पूरब में विषम बुंदेलखंड,
यह बिंध्यक्षेत्र, विंध्येलखंड, सुप्रसिद्ध वीर बुंदेलखंड ।
यह हिरण्यवर्मा का दशार्ण, वज्रस्थलजो इतना प्रचंड,
जोजाक भुक्ति, जुज्झौति हुआ, विंध्येलखंड बुंदेलखंड ।

यह निखिल भूमि भीतर-भीतर चट्टानों से ही पाटी है ।
पथ छिपे झाड़ झंखाड़ों में दुर्लभ खेतों की माटी है ।
तब भी बीना से सागर तक, धरती गेहूँ की घाटी है ।
वह अन्नपूर्णा मातृमही, सोना है, कब वह माटी है ?

अगणित श्रेणियाँ उभर छाई, पग उठते गिरि-वन-घाटी है ।
पार्वती सरित नद-नालों की कितनी ही विस्तृत पाटी है ।
वे गहन बेतवा-चंबल के, यमुना के वे बीहड़, कटान;
नद-नालों के झुरमुट कगार, पावस के प्राकृत-पथ-प्रमाण ।

बेतवा, केन, तमसा-तटिनी, ढलती धसान, सुंदर सुनार;(दशार्ण)
वन-गिरि-अंचल को सींच रही, विस्तृत तटके हरियर कछार ।
धाराओं का वह तरल दाह, कितने युग का श्रम-सार लिए ।
काटा कठोरतम चट्टानें, निज लक्ष्य-पंथ निर्धार किए ।

जब बहतीं तल-तट से, उलझीं, उन चट्टानी व्यवधानों में;
करतीं कठोर स्वर 'खल-खल खल' हँसती फेनिल उत्थानों में ।
दूधी-सी हँसी फेन-पट की, अविराम चपल अभियानों में,
धारा में बैठे विपुल उपल, गंगाधर के उपमानों में ।

गिरि-श्रृंग-प्रस्रवित, प्रवहमान, निर्झर झरियों के अमरगान ।
ज्यों प्रथम सृष्टि से गूँज रहे, आरण्यक-थल के सामगान ।
बहती रक्तिम-कण की मौरम, मोड़ों के पथ पर-रमी हुई ।
ढकतीं चट्टानें, उपल सुविस्तृत, पाटबनी, पथ-रमी हुई ।

वह लाल रही रक्ताभ धरा, ज्वालामुखि जल-जल बुझे यहाँ;
वह अंगारी आवेश लिए भारत की वक्षित ज्वाल जहाँ ।
गिरि-श्रेणि-शिखर, वे हस्तिकर्ण-सागौन हिलाते पात जहाँ;
ऊँचे अम्बर से झर नीरद, बन जाते नीर-प्रपात जहाँ ।

पीताभ मुकुट-से पुष्पभार ले आती नीरद की फुहार,
जिसने देखा वह धन्य हुआ, अद्भुत मनहर पावस-श्रृंगार ।
छाती हरियाली झूम-झूम, तृण-वन में सावन की बहार,
वन-वन खेतों में गाती है, मन की तरुणाई पी-पुकार ।
हँसता मन-वन, वनःफूलों का, मादक सुगंध ले पवन-भार;
प्रति दिशा-दिशा में बह जाता, सुरभित कर जग-वीथी अपार,
वे विंध्याचल-श्रेणियाँ बिखर, दीवारों का करतीं विधान;
नयनों का सम्मोहन करते, वे ढलते-उठते-गिरि-ढलान ।
गिरि चित्रकूट-से सागर-प्रति, बीहड़ वन-गिरि का नहीं छोर,
मृग-वृक,व्याघ्रों का, सिंहों का, व्यापक-सा रहता जहाँ रोर ।
हूँकते कहीं लंगूर, कहीं जंबुक का भरता निशा हूह ;
पारावत, तोता, हरिल झुंड, कुहँकते कहीं नर्तित मयूर ।
ललकार रहा तीतर युयुत्स, तीतरी दे रही ओज टेर ।
चुगते कंकड़ जो झुंड बाँध, तृण झाड़ी में छिपते बटेर ।
करते समूह जुड़ 'काँव-काँव,डालों पर बैठे कहीं काग;
चीलें नभ में उड़ भक्ष्य खोज-रत, जोड़ रहीं निज दृष्टि-भाग ।
कूदते भागते शश-श्रृगाल, मृग-यूथ चौकड़ी नभ में भर;
वृक, श्वान, व्याघ्र रिक्षादि कहीं, अति भयद सिंह के गर्जन स्वर।
उगता है सूरज देर से, अस्तंगत होता शीघ्र यहाँ ;
उदयाचल, अस्ताचल होते, नीरद-रंगों के खेल जहाँ ?
जन-वर्णित अस्ताचल, सुदृश्य कन्या-कुमारिका अंचल का ।
उदयास्त किंतु अनुदिन अद्भुत, मोहक गँभीरिया-सागर का ।
संध्या का स्वर्ण-सुनहला [illegible]न,क्रम-क्रम से होता क्षितिज-लीन ।
मन-दृष्टि सहज ही बँध जाते, सहृदय-जन होते आत्मलीन ।
इतिहास यहीं घोषित करता, स्थल यह रहा पिंडाहारियों का
है यहीं चतुष्पथराजमार्ग, ध्रुव-केंद्र जो उत्तर-दक्षि[illegible] का ।
पतझड़ वन में धर अग्निशिखा, शिशिरातप हरियाली-विनाश
आते वसंत फल-फूलों के, सज्जित रंजित नव-नव विकास ।
हाँ, किंतु ग्रीष्म झुलसा देता, नीरस कर गिरिथल दिशा-छोर;
तब भी हरियर वे वन पलाश, गिरि वन में नव-सुषमा-हिलोर ।
महकते करौंदा मह-महकर, दहकते पलाशी-वन अपार;
कितने अनाम-द्रुम लता-सुमन, सुरभित करते चंचल बयार ।
डाली-डाली मधु-छत्र धरे टहनी-टहनी पर मधु माखी
संग्रही पुष्प-वन चारिणि, संगीतिनि, अमृत-अभिलाषी ।
मधु-प्यासी झाड़ी-झाड़ रहीं, झुरमुट में मधु के कलश जहाँ;
नालों में रिसती गिरि-धारा, पृथ्वी का पावन-दुग्ध जहाँ ?

पगधर कठोर-चट्टानों पर, निभृत-गिरि-श्रृंगों को नापा,
नदि-नद-झुरमुट-अंधेरे में, धँस-धँस कर साहस से झाँका ।
सीधे चढ़ दुर्गम शिखरों पर, झाड़ी-झुरमुट में भूल गया;
प्राकृत-सुषमा-विहरणचारी, बेसुध-मन दुख जो भूल गया ।

वृश्चिक-दंशों ने ठोंक दिया, फुंकार कहीं सूचना मिली;
हँस-हँस कर स्वागत किया, जहाँ वन सिंहों की गर्जना मिली ।
यह ही वन-जीवन-धारा है,यह ही आरण्यक-सुषमा है ।
यह प्रकृति अनूठी, इसमें ही साहस की सुखमय गरिमा है ।

सागर-गिरि-अंचल, ढाना तक, मेरा पागल मन घूम रहा,
प्रति पत्थर-पत्थर, श्रेणि-शिखर, मेरे पग को पहचान रहा;
पास ही गढ़ा-कोटा दुर्गम, फैलाता अपना शौर्य-हास ;
यह छत्रशाल का रण-स्थल, हो गया जहाँ वंगश-विनाश ।

पावस रिमझिम, वन हिलता ज्यों, हरियर सागर वह सावन का;
गाता जीवन भर वंशी स्वर, वन विहरण चारण भावों का ।
गिरितल में देखो सुंदर-सी, फैली उस विस्तृत घाटी में;
वे हरित शस्य-कालीन बिछे, खेतों की काली माटी में ।

वे खड़ीं टौरिया के ऊपर जो पर्णकुटी नीची छोटी,
बैठे ही गृह-प्रवेश-संभव, आदिम निवास-थल-परिपाटी ।'
वैदिक युग के गिरिजन बसते, कितने अब भी वे वनवासी
उन सभ्य नागरों-नगरों की जातियाँ सभी जो सहवासी ।

विजयादशमी पूजते वीर, तीक्ष्ण कुल्हाड़ ले धनुष-बाण
नव रात्रि शक्ति माता-मंदिर, पावन-वन-थल उत्सव-प्रमाण ।
ओंठों-गालों में बिंध त्रिशूल, भूमते भक्ति-आवेश भरे ;
वे श्रद्धा की सुमूर्ति गिरिजन, माँ-दर्शन के शुचि भाव भरे ।

साहसी सुहृद जो गिरिजन के, निज ज्ञान-संस्कृति ले अपार,
दृढ़-निष्ठा के समाज-सेवी, ऋषि यहीं छये जो प्रथमबार ।
शरभंग, सुतीक्ष्ण, अत्रि-आश्रम, ऋषियों के वे आरण्य-वास ।
शुचि ज्ञान-प्रभा-रवि के अगस्त्य कर गये अंबुनिधि सहजप्राश

आगे ही बढ़े अगस्त्य वीर कितने सागर कर गये पार,
लौटे न पूज्य बैठे पूरब के भू-मंदिर के विभा-हार ।
विंध्याचल अब भी लेटा है, जिनकी आज्ञा के चरणों पर;
ऋषिज्ञानी अभी विराज रहे, नर्मदा-तीर्थ पावन-तट पर ।

वह व्यासदेव की पुण्य धरा, थी करिवर-वदन विराज रही ;
वेदान्त -भूमि कालपी बनी, यमुना-तट वंशी बाज रही ।
वन-ग्राम छये खपड़ैलो के, प्रस्तर-खंडों के रचे धाम;
कोठरी प्रलंबित-... ओसार, ग्रामों की सीमाक्रम, ललाम ।

सब्जी की आँगनवाड़ी में, हँस रहे सदन के स्वर्ग-फूल;
किलकते, थिरकते, नाच रहे, मुसकानें बिखराते अमोल ।
कुछ मार्ग-द्वार- जो चतुर्दिशा, गलियों-गलियारों के निकास,
रक्षित-से दुर्ग-द्वार जैसे वन-खेतों के पथ के विकास ।

प्रतिग्राम-ग्राम लघु दुर्ग बनेः प्रति ग्राम-ग्राम नव ग्राम राज,
अपनी उसगर्वित गरिमा का, लेकर ऐतिहासिक राज-काज ।
हैं सघन उगाये कहीं आम्र, वट-पीपल वे मादक मधूक ।
गोचारण-रत गोपाल, जहाँ-वन की हरियर खिल रही धूप ।

इसमें कलचुरियों, गुप्तों का, वर्मा, चंदेल-बघेलों का,
अब भी गुणगान हुआ करता, नरपतियों के सत्कर्मों का ;
बुदेलों के बल-पौरुष का, फैला प्रकाश है भूतल में,
उनकी जय गाथा व्याप रही, बुंदेलखंड के कण-कण में ।

कर्णावृत कुंतल, गण्डस्थल, आकर्ण स्वर्ण-कुंडल सज्जितः
वे सघन श्याम गल मुच्छ धरे बुंदेलीजन शोभा-मंडित ।
धोती की कंछा फहराती, कटि कसी अँगौछे से सुंदर,
लंबी, झब्बू पनही पग में, वह सुदृढ़ यष्टि निज कर में धर ।

बुंदेला जन की ठाट, स्वयं अपनी पहचान करा जाती
एक लँगी साड़ियाँ कसी पुष्ट, रमणी की पिडली दरसातीं ।
वे लाल-नील साड़ियाँ, भाल रोली, गुदना कर गालों पर ।
सौंदर्य सनातन सँवर रहा, आवक्ष माल-श्रृंगारों पर ;

वे रजत कड़ा भारी पग में, हाथों की टड़िया टनक रहीं ;
वे सघन चूड़ियाँ रंग-गहन, नारी संज्ञा ले खनक रहीं;
सुतिया मोटी शुचि गल हमेल, लालिम कंचुकि रंग छिटक रहीं;
किस मधुर भाव की मादकता, मंथर पग-पग पर मसक रही;

बाहों में बाजूबंद कसे, मोटे चाँदी के तारों के,
हँसिया कुल्हाड़ मुट्ठी पकड़े, कर सूने कब हथियारों से ।
निज कौटुम्बिक-जीवन-यापन, श्रममय गृहिणी-कर निरत रहे
बालायें माँ की अनुहारिणि, चंचल पग पथ में थिरक रहे;

कृषि,गोधन,बाल-गोपालों की, वृद्धों की सेवा साध्य रही;
भारत-गृहिणी पति के सँग में, गृहरानी-सी आराध्य रही ।
सिर धरे लकड़ियों के बोझे, वनराज जिन्हें ज्यों शशा-श्वान,
उन धीर-वीर रमणीजन से,भारत का गौरव भासमान,

वे वीर-प्रसविनी मातायें, जनमें जिनसे वे वीर बाल,
जो बने शत्रु-उर शूल रहे, भारत के गौरव शत्रु-साल
वे वीर-व्रती त्यागीजनमें जिनके मस्तक में भारत था
दे वीर-व्रती ध्यानी जनमें, जिनके अंतर मे भारत था ।

यह भूमि महत्तम पुरुषों की, गाता नभ जिनके यशोगान,
जिनके गुण-धर्मों-कर्मों पर, न्योछावर सारा मही यान ।
मानवता के हित-चिंतन-रत, रक्षित करते निज स्वाभिमान;
निज राष्ट्र-धर्म के पालन-रत, निज-जीवन जो करगये दान ।

इतिहास पृष्ठ वे, जिनके ही वे अमर यशस्वी मान बने ;
गुंजित अनुभव जो घहर रहे व्यापक-अंबर जय गान घने ।
उन वीर पूर्वजों के महान कर्मों का युवजन ! ध्यान करो ।
निज संस्कृति धर्म-स्वदेश हेतु, बढ़-बढ़ वीरों अभियान करो ।

बुंदेल खंड की पुण्य-धरा, भारत गौरव की थाती है ।
भारत वसुंधरा मातृभूमि, अपने ही तन की माटी है ।
इसको पूजो, इसको पूजो, मतभ्रम में भूलो, ध्यान करो,
ओ मातृभूमि के वीर पुत्र ! उसके हित तन मन दान करो ।

शिशुपाल-चेदि की पुरा-कथा, जो स्वाभिमान का मान बनी ।
विंध्येलों की यह राज-धरा हिन्दू -गौरव की ढाल बनीं ।
कलचुरि-नृप, गुप्त, बघेलों की वंशज-जातियाँ विराज रहीं ।
निज सत्ता का इतिहास लिए, कृषि भू की सत्ता साज रहीं ।

परमर्दिदेव आल्हा-ऊदल, वरवीर बघेल मदनवर्मा ।
ले कीर्ति प्रशस्त विराज रहे, नय-नीति-प्रकाशक सत्कर्मा ।



३- बुंदेले और चंपतराय

सिर कसी पाग, ऐंठी मूछें, सज्रा असि कर-रण-ढालों की,
लप-लप त्रिशूल, भाले, धनु शर, जय बुंदेले हर बोलों की
निज मातृभूमि का तम हरने, जो उठे चरण नर-वीरों के ।
पूजो असिधारी भुजबल को तेजस्वी पूर्वज शूरों के

इस पुण्य धरा के कण-कण में, रण-चंडी-शक्ति विराज रही
हर बोल हिन्दु-हुंकारों में, वह सिंह-वाहिनी भ्राज रही ।
म्लेक्षों का करती महानाश, आहरण कर रही अनाचार ;
माँ आदिशक्ति की प्रभा प्रकट, हर रही अवनि का अंधकार ।

'हर-हर शिव, रुद्र त्रिशूलपाणि, डिम-डिम डमरू के रण निनाद,
भूतल के करते पाप-क्षार, बाँटते दिव्यता का प्रसाद ।
जागो भारत के युवा-शौर्य, अपने पौरुष का तेज वरो !
इस पुण्य-भूमि से असुरों का, मायावी वह तम-तोम हरो ।

वे हेमकरण के वंशज जो, काशी से आये गहरवार
छाये विंध्या-गिरि-अंचल में, करते स्वराज्य-थल का प्रसारः
'अरि वर्मा' ने फिर घेर जिन्हें, छीना उनका सारा प्रदेश
निरुपाय पूजने लगे देवि, जो विंध्य-वासिनी मातृ-वेश ।

वरदान मिला जो माता से, विंध्येले नूतनशक्ति हुए ।
विंध्येले ही बुंदेल हुए, बुंदेल खंड की शास्ति हुए ।
चंदेले निर्बल शासक जो, सन्मुख में सारे क्षीण हुए ।
बुंदेले रुद्र-प्रताप वीर ओरछा-पाट आसीन हुए ।

अकबर और मधुकर शाह

मुगलों की थी बढ़ रही कला, आक्रमण और वे अनाचार ।
गो-भक्षण, स्त्री-हरण, मिटाते हिन्दु-धर्म-मंदिर अपार ।
आसुरी-शक्ति से धर्मवीर टकराने मधुकर शाह बढ़े,
इस धर्म-धरा के प्रथम-प्रथम जैसे थे असिधर हाथ कढ़े ।

अकबर शाही को छेक दिया, तीखी मधुकर-तलवारों ने;
आये जो मुगल परास्त भगे, उनके उन भीषण वारों में ।
आया सादिक खाँ सेनापति, ले आशकरण तोमर-सहाय,
वर वीर कुँअर होरल जूझे, आहत लौटे वे राम शाह ।

तब भी प्रवीर मधुकर न झुके, अब्दुल्ला आशकरण धाये ।
घनघोर हुआ संग्राम, पराजित 'शाह' ओरछा में आये ।
बेवंश अधीन अब मुगलों के निरुपाय बुँदेला वीर हुआ,
तन-मन-आहत केशरी-वृद्ध, कुछ दिन में प्रभु पद-लीन हुआ ।

क्षत्रिय मानी फैला-प्रकाश, वह धर्मवीर, वह कर्मवीर,
आलोक-लोक में लीन हुआ, खींचता ज्योति की ज्यों लकीर ।
'जय मातृभूमि', 'जय मातृभूमि' ममता का क्षण ज्यों क्षीण हुआ,
संकल्प स्वयं जैसे महान, उस मृत्यु-अंक-आसीन हुआ ।
दुर्भाग्य रहा यह भारत का, हिंदू-जन का अविवेक रहा ।
धर्मी हिंदू-ही, अविचारी-हिन्दू का यों आखेट रहा;
यदि आशकरण होता न वहां, उस अकबर दल का यों सहाय
जूझते न 'होरल' राजकुँअर', हारते न मधुकर निस्सहाय ।

चंपतराय और वीर सिंह देव-

वर वीर सिंह साहसी पुत्र, ओरछापाट-आसीन हुआ
अपनी-प्रवीरता, कौशल से, अकबर-उर-तीक्ष्ण-तीर हुआ,
अकबर-सेनापति राजसिंह, चढ़ चला दबा ओरछा-छोर
पर वीर सिंह से हार भगा, निज प्राण बचा ग्वालियर ओर,
सेनापति कृपाराम वर्मा, थे बकसराय प्रधान धीर
वह मुकुट गोंड, केशो प्रधान, बलवंत अहिर, चंपत प्रवीर,
रणधीर सुभट सामंत सभी, संगी उस नैश आक्रमण में,
अब चकित पराजित अकबर था, खींचता संधि-रेखा रण में;
हो गया कत्ल वह अबुलफजल, नीतिज्ञ, विज्ञकवि, अतिभोगी;
था दोष वीर सिंह का अवश्य, पर जहाँगीर था सहयोगी,
नीतिज्ञ, धीर, ज्ञानी-मानी वह कुशल-प्रशासक रण-प्रवीर,
कैसा कितना यह जान सका, केवल उसको वह जहाँगीर ?
जिसका हो करके कृपा पात्र, ओरछा-राज्य की सीमायें,
जिसने प्रशस्त की कौशल से, फैला बाहें दायें-बायें ।
इस कौशल में मंत्रणा रही, उस वंशजवीर चमूपति की
जो चंपतराय प्रसिद्ध हुआ, बुंदेल खंड-छबि निर्मित की ।
बुंदेल खंड का मान बना, उसका नेतृत्व महान रहा;
संघर्षों की रणभेरी में, इतिहासों में जयगान रहा,
मुगलों की सत्ता के विरुद्ध, बुंदेल वीर सब खड़े रहे,
प्रेरणा उसी की थी, प्रवीर, सहस्वाभिमान जो अड़े रहे ।
उस महा विक्रमी योद्धा के, निस्पृह रण-कौशल से असीम,
बुंदेलखंड उन्मुक्त रहा, हो सका न मुगलों के अधीन ।
अतिपायी था वह जहाँगीर, सत्ता-संचालक नूरजहाँ;
भावी-सिंहासन अधिकारी, खुसरो था निज को मान रहा;
पश्चात् दिलीपति जहाँगीर जब खुदागज को पहुँच गया
उत्तराधिकारी, शाहजहाँ, अब दिल्लीपति सम्राट हुआ ।
पर शाहजहाँ, व वीरसिंह में, आपस में कुछ पटी नहीं
मतभेद बढ़ा, विद्रोह बढ़ा, घटना कुछ यों अटपटी हुई,

ज्यों जहाँगीर की मृत्यु हुई, बुंदेलखंड भी मुक्त हुआ ;
उन्मुक्त ध्वजा नभ में फहरी, दिल्ली का कर भी बंद हुआ ;
रणवीर, स्वाभिमानी सुधीर, अपने प्रदेश में पर-शासक
कैसे सह सकते बुंदेले जब कुशल चमूपति थे नायक ।

सत्ता-मद में हो चूर मुगल, हिन्दू-बल को थे दबा रहे ;
'बाकी खाँ' को भेजा तत्क्षण, बुंदेलों पर दबदबा रहे ।
अपराजेय संगठित शक्ति किंतु चंपत की सन्मुख अड़ी रही;
निरुपाय पराजित लौट भगा, बाकी असफल रण-कला रही ।

चंपत-सुत ज्येष्ठ सारदाहन, बारह-वर्षी जो वीर बाल;
था स्नान-निरत पथ में, सुंदर वन-श्री में पावन नीर-ताल ।
बाकी खाँ ने बढ़ घेर लिया, एकाकी पर थे कटु प्रहार,
पर बालवीर ने धनुष धाम, की अद्भुत शर-वर्षा अपार

विष-बुझे तीर खा,मुगलभगे, चिंघाड़े हाथी घुड़-सवार;
बाकी खाँ भगा न मुड़ देखा, वह बाल हुआ रण-सिंधु पार ।
दुख-विह्वल चंपतराय हुए,सुन वीर पुत्र का समाचार;
पर वीर-आत्मा प्रकट हुई, नव-जन्म-हेतु दे स्वप्न-सार ।

सुत मरे याकि तन आहत हो, रणभूमि न छोड़ी चंपत ने ;
अरि के सन्मुख झुक सके नहीं, प्राणों के भीषण-संकट में ।
'बाकी' की दो-दो हार हुई, था शाहजहाँ चिंतित अपार
अपराजेय मानते जो निज को, थे वही मुगल बल छार-छार

आपसी फूट से टूटे थे,संगठन-हीन, भारती-वीर;
एकत्र खड़े अब ध्वजा थाम, चंपत के सफल प्रयास-तीर ।
चढ़ आया स्वयं ओरछा पर, ले शाहजहाँ निज सैन्य विपुल ।
मुट्ठी भर किंतु बुँदेलों का था स्वाभिमान, विश्वास अतुल :

सुख-दुख-संगी वज्रंगी जो, स्वाधीन-धरा का भरे भाव ।
रण-रंगी-वीर जहाँ तत्पर, संगठन शक्ति की भरे दाव ।
जो आत्मबली ले शक्ति सजग, छू सकता उनकी भूमि कौन ?
दृढ़-संकल्पों के आगे जो ठहरे वह ऐसी शक्ति कौन ?

सेनापति चंपतराय खड़े, अपने बुंदेले-वीर लिए ;
अरि दलन हेतु असि धनुषबाण, बल बुद्धि विवेकी शौर्य लिए ।
हर-हर-बम की बमकार हुई, गूँजे अंबर में रण-विषाण
चमके अंबर लप-लप त्रिशूल, दृढ़-बाहों में खड़की कृपाण ।

बाणों की वर्षा घनीभूत, असि-भालों के थे तीक्ष्ण वार,
गिरि कानन थल में गूँजरहा, 'हर-हर-बम', 'हर-हर-बम' अपार
सिंहों की प्रबल चपेटों से, आहत मुगली सेना, सवार,
भागे सब दिल्ली ओर,भगा वह शाहजहाँ निज पथ-विचार ।

आहत-मद, लिये पराजय की पीड़ा, व्याकुल दिल्ली आया ;
रस्सी तो जली, किंतु ऐंठन थी शेष दिलीपति की काया ।
अब्दुल्ला और मुहब्बत खाँ, दतियाखान को बुलवाया;
विश्वास-पात्र सेनापतियों से नई मंत्रणा ठहराया ।

सम्मत ऐसा प्रस्ताव हुआ, ले अपनी सेनायें समस्त
आकस्मिक धावे बोल, बुँदेलों को कर देना पूर्ण ध्वस्त ।
आकस्मिक धावे से भौचक, घबड़ा सारे बुंदेल वीर ।
स्वीकार हार कर, भूलेंगे स्वाधीन-धरा का स्वप्न धीर ।

बाकी खाँ-सहित, सभी सेनापति, आये निज-निज सैन्य लिए ;
अपनी पालकी, हरम, नर्तकियाँ, घुँघरू-तबला साज लिए ।
संपूर्ण शक्तिबल मुगलों का, बुंदेलखंड पर आ धमका ;
हय हाथी - पैदल-दल अपार, तोपों के गोलों का धड़का ।

ले आया था सीमांत-सैन्य भी शाहजहाँ इस बार यहाँ,
सर्वत्र सैन्य ही सैन्य, कहाँ था कौन, न दिखता छोर जहाँ ?
विचलित पर चंपतराय न थे, पहले ही से थे सावधान ;
अनुमान उन्हें था, आयेगा निश्चित झंझावती उफान ।

अनुमान आक्रमण का उनको था, इसीलिए वे सजग रहे;
संगठित, सशक्त अधिक थे अब, रण-व्यूह रचे सन्नद्ध रहे ।
निश्चय था, लड़ें, पहाड़ों से, वन की ओटों से सभी वीर,
मुगलों से कोई संधि कहीं, अब नहीं करेंगे शूर-धीर ।

पीछे हट विषम पहाड़ों में दायें-बायें जो छिपे शूर
अपनी चपेट में घेर,करेंगे मुगली-बल को चूर-चूर ।
निज धर्म-धरा की रक्षाहित, प्राणों की बाजी लगा वीर,
संहार करेंगे मुगलों का, असिभाले, विष के बुझे तीर,

योजना-बद्ध सब कार्य हुआ, कोई भी पथ में अड़े नहीं ;
पीछे हट गये पहाड़ों में, बुंदेले सन्मुख लड़े नहीं ।
सीमित जो उनकी शक्ति; अस्तु सन्मुख लड़ना था आत्मघात
कौशल ही था उत्तम उपाय,करना था उनको अरि-निपात;

भेजीं चुनौतियाँ चंपत को कितनी ही, तत्पर शाहजहाँ;
सप्रयत्न रहा, बुंदेले आ, सन्मुख, समतल में लड़ें यहाँ
रण-कुशल किंतु बुंदेलवीर, गिरि-वन में तत्पर डटे रहे;
अपना रण-व्यूह सँभाल, शत्रु के पार्श्वों में ही सटे रहे ।

यों समय विशेष व्यतीत हुआ, मुगली सेना थी परेशान,
था शाहजहाँ चिंतित विशेष, सीमा-प्रदेश का रहा-ध्यान ।
समझा अपार यह सैन्य-शक्ति, अवलोक भीत बुंदेल सभी
जा छिपे उधर गिरि-वन-थल में,सन्मुख रण में असमर्थ सभी ।

अतएव अधिकतम सैन्यशक्ति, लौटी सीमांत प्रदेशों को;
आवश्यक सेना शेष रही, जो दबा सके बुंदेलों को;
सेनापति चंपतराय देखते रहे, मुगलदल-हलचल को
रणनीति अनूठी थी उनकी, वे समझ रहे थे निज-बल को ।
कम हुई मुगलसेना, जो थे शेष,सुरा-सुंदरी मस्त ;
तबले घुँघरू की छूम-छनन, वेश्या कटाक्ष में मुगल व्यस्त ।
निर्देशित निकले अस्तु वीर बुंदेले विंध्या-गह्वर से;
मुगली सेना पर टूट पड़े, योद्धागण भीषण अंधड़ से ।
खड़कीं तलवारें छप-छप कर, भालों की नोकें घाव हुई,
धनुवाणों की बौछार घोर विंध्या-अटवी की दाव हुई ।
निज स्वाभिमान के घनीभूत आवेश भरे योद्धा लपके;
आकस्मिक धावे से अवाक्, भागे मुगलीदल हड़बड़ से ।
कुछ सँभल न पाये मुगलीदल, अविराम प्रहारों पर प्रहार
जो सन्मुख आते कट जाते, बुंदेली-असि के विकटवार ।
तबले, सारंगी, गीत-रास,रंडी-भँडुए सब साज उड़े ।
हरमों में हाहाकार मचा, सेनापतियों के होश उड़े ।
जूझे बाकी खाँ, फतेहखान, शहबाज खान का शीश उड़ा;
नेतृत्वहीन सेना भागी, मुगलों का सब रण-साज उड़ा :
रुंडों-मुंडों से पटी धरा, अनगिन योद्धा रण-खेत रहे,
घायल विकलांग गिरे, धरती पर कराहते लेट रहे ।
सब रक्त-माँस से पटी धरा, पग-पग वह शोणित कीच बनी;
छप-छप तलवारें बोल रहीं, भालों-तीरों की तीक्ष्ण अनी ।
हय-हाथी-ऊँट बँधे-चीखे, तोपों के मुख भी बंद रहे ।
सब प्राण बचाते तितर-बितर, भागे पग, सब स्वच्छंद रहे ।
था कवच कहीं, सिर पेंच कहीं, तलवार-ढाल सब पड़ी रहीं;
कोई न किसी को देख रहा, सबको अपनी ही पड़ी रही ।
अल्ला-तोबा कर भाग रहे, कोई न किसी को पूज रहा
हर बोल शूरमा गरज रहे, जयनाद गगन में गूँज रहा ।
रण-साज लूट, अब अति-समर्थ, बुंदेली-सेना प्रबल हुई;
जय बिंध्य-वासिनी दुर्गा की, मानो भूतल में प्रखर हुई ।
बुंदेलों ने बढ़ इसी समय सीरोंज क्षेत्र को विजित किया ।
विदिशा-उज्जैन लुटे सारे, सारा-प्रदेश आधीन किया
अति दुखित,पराजित शाहजहाँ, संतापित मन में आग लिए;
तृतीय आक्रमण-हेतु सैन्यदल, नूतन उसने भेज दिए ।
अब्दुल्ला,वली बहादुर वे, नौरोज खान, मुहम्मद खान,
हो सभी पराजित भाग गये, अश्वों की अपने बाग थाम ।

भाड़े की वीर बहादुर कब, भिड़ सकते सच्चे वीरों से ?
उन मातृभूमि के अभिमानी, असिवारों, सन्-सन् तीरों से।
इस अल्प -अवधि में तीन बार दिल्लीपति शाहजहाँ हारा
चंपत की जय नभ भेद रही, बुंदेलों का बल हुंकारा ।

था शाहजहाँ अब समझ गया, वह वीरसिंह की शक्ति प्रबल,
निरुपाय विवश था संधि-हेतु, झुक गया पराजित वह हतबल।
कर प्रथम मैत्री की चर्चा, आरंभ संधि की बातें की;
तब भी गृह-कलह, बढ़ाने की, निजकूटनीति की घातें की।

स्वाधीन नृपति अब वीरसिंह, व्यापक प्रताप की प्रतिभायें
द्वय कोटि बढ़ा राजस्व, चतुर्दिक बढ़ीं राज्य की सीमायें।
आकस्मिक प्रकृति-प्रकोप हुआ, पावस के नीरद रिक्त हुए
दुर्भिक्ष पड़ा, अन्नाभाव की पीड़ा से जन-त्रस्त हुए ।

दुर्भाग्य इसी क्षण वीर सिंह, प्रभु-सेवा में सुरलोक गये
विपरीत समय का अनुभव कर, बुंदेल संधि को मान गये।

चंपतराय और जुज्झार सिंह

वे ज्येष्ठपुत्र जुज्झार सिंह ओरछा-पाट-आसीन हुए ।
सेवा में चंपतराय उसी निष्ठा से उनके साथ हुए ।
बेवश अवसर पा शाहजहाँ ने कूटनीति का जाल बुना,
ओरछा राज्य स्वाधीन मान, निज राजनीति का ज्ञान बुना।

स्वाधीन नृपति मान्यता दिया, दी पंच हजारी मनसबदारी,
साथ ही एरच, चंदेरी, धामौनी नृप भी अब मनसबधारी।
'शाही अमीर'-पद सम्मानित, चंपत महान सेनानी को,
सर्वत्र प्रशंसा वीरोचित, उस मातृभूमि के मानी को;

वह थी भविष्य पर आधारित, नव कूटनीति जो दिल्ली की,
वह दंभ,ईर्ष्या-द्वेष बनी, दुर्भाग्य,फूट-बुंदेलों की ।
था स्वयं पराजित, बेवश जो, उससे प्रदत्त मनसब लेना।
वह सीधापन या भूल रही, बुंदेलों की कैसे कहना ?

जो रटते नित ईमान पाठ, वे उससे उतना दूर रहे;
उन असुरों का इतिहास यही, जो बेइमान ही सदा रहे।
जब तक निर्बल, तबतक उनको, भाता है केवल संधि-पत्र,
अन्यथा सबल होते हीजो, बन जाते हैं तत्काल शत्रु ।

इस्लाम-परे, सब जग काफिर, जिनका किताब-निर्देश यही
सबको मारो-काटो, लूटो, जिनका नैतिक उपदेश यही,
माँ-बहनों के अपकारक जो, हैं नीच कुकर्मी, हत्यारे ।
सहते आते भारतवासी, वे घोर क्रूरता की वारें ।

भारत की नैतिक निष्ठा से वे स्वार्थ सदा साधते रहे।
'छलियों से छल' की नीति भूल, भारतवासी हारते रहे।
था वीर शिवाजी ने समझा, उनके नैतिक आचारों को,
अतएव सदा उन्नत रक्खा अपनी विजयी तलवारों को।

निर्देश त्याग कर जयसिंह के, अपने गौरव को अपनाया,
दरबारी आलम में सक्रोध, अपमानित मनसब ठुकराया।
वह उदाहरण निर्देशक था, शाही में जमे गुलामों को ;
जो स्वयं राष्ट्र के नाश-हेतु, थे सजा रहे दरबारों को।

शाही सत्ता अपमानित कर, रक्खा अपना सम्मान सभी
दृढ़-संकल्पी उस राष्ट्रवीर का झुका न गर्वित भाल कभी
स्वाधीन धरा का स्वप्न लिए म्लेक्षों के सन्मुख तने रहे।
सम्राट छत्रपति स्वयं बने, हिन्दूजन-गौरव बने रहे।

उनके सन्मुख जो हिन्दूजन, कोई भी छोटा-बड़ा न था
निज राष्ट्र-धर्म की सेवा में,राजा सैनिक से बड़ा न था।
उनकी ललकारों में जाने कितनी ललकारें स्वरित हुईं।
उनकी असिधारी भुजा-संग कितनी तलवारें चमक गईं।

असिपाणि फिरँगजी नरसाला, जय 'ताना' की हुंकारों की,
जय मातृभूमि के बलिदानी,बाजी प्रभु की ललकारों की।
असि-व्रती गुरू गोविंद सिंह, जय बलिदानी गुरु-पुत्रों की
जय-बंदा वीर बहादुर की, बलिदानी मातृ-सपूतों की।

ओ भारत वीरो ! जागृत हो, निज गौरव का इतिहास पढ़ो,
अपने प्रताप की प्रभा वरो, स्वाधीन-धरा की नींव गढ़ो।
उस संधि और मनसबदारी का इंद्रजाल अब रँग लाया,
अपनी-अपनी संप्रभुता के भावों ने सबको भरमाया।

जुज्झारसिंह का अहं बढ़ा, सत्तामद का सिरपेंच चढ़ा;
शंकालु सभी से, सौतेले हरदौल बंधु को जहर दिया
चंपत ने समझाया बहुधा, दुर्बुद्धि किंतु कब मान सका ?
अंतर्विरोध अतएव बढ़ा, जागा जब बैरी आ धमका।

सहयोगी सभी विरोधी थे, अब कोई नहीं सहाय रहा;
अपनी करनी का फल सन्मुख, बस अंधकार पर्याय रहा।
अवसर पा, शाहजहाँ ने अब, बुंदेलखंड पर ध्यान दिया।
ओरछा राज्य पर मुगल महावत खाँने फिर आक्रमण किया।

चंदेरी भारतशाह, एरच-नृप पहाड़सिंह की ले सहाय,
अब्दुल्ला, सूबेदार कालपी, दतिया के भगवंत राय।
था सबल महावतखाँ समक्ष, जुज्झारसिंह भयभीत हुआ
त्रयबार हार घुटने टेके, तब स्वयं संधिकर, मीत हुआ

अब कायर बन जुज्झार सिंह ने, उसी शाह से संधि किया
पर चंपत संधि-विरुद्ध रहे, नृपको झुकने से मना किया।
फिर हुआ आक्रमण मुगलों का, जुज्झारसिंह था शक्तिहीन।
सकुटुम्ब भगा वन ओर, ओरछा-छोड़-मुगल-सेना-अधीन।

विक्रमाजीत आत्मज का फिर, गोंडों द्वारा बध किया गया
जो रहे सहायक मुगलों के उनसे ही शाका हरा गया।
संघर्ष-निरत बुंदेल रहे, उलझा मुगलों को किसी भाँति।
फिरभी बंदी हो पुत्र-सहित, सिर कटे नृपति हो गए शांत।

घायल माता मर गई, रानियाँ मुगल-हरम में पहुँच गयीं।
द्वितीयात्मज उदयभानु, दौना-सेवक को बेड़ी कसी गई।
स्वीकृत इस्लाम न करने से, दोनों के ही सिर काट दिये।
जुज्झार और विक्रम के सिर, दिल्ली जन-पथ पर लटक गये।

लघु आत्मज दुर्गभानु एवं, विक्रमसुत दुर्जन साल किंतु ;
बंदी हो,बने कुली खाँ, अली कुली खाँ, होकर विवश किंतु।
थे स्वामिभक्त चंपत सहाय, सहयोगपूर्ण यद्यपि उनका;
शंकालु-वृत्ति से पर नृप की, शाका मिट गया ओरछा का।

अपने पापों से मिटा स्वयं, जुज्झारसिंह, कुलमान मिटा;
दुर्भाग्य अयोग्य व्यक्ति से ही, बुंदेलखंड का ऐक्य मिटा,
चंपत सुदूर अन्यत्र कहीं थे, घटनायें जब घटीं यहाँ;
मुगलों से फिर संघर्ष हेतु जीवित जैसे संकल्प रहा।

जुज्झारसिंह के दमन-हेतु, जिनकी सहायता थी सशक्त;
चंदेरी देवीसिंह हुए ओरछा-नृपति अब मुगल भक्त।
दो वर्ष ओरछा-पाट रहे, जन-भाव-समर्थन मिला नहीं।
सब मान उसे देश-द्रोही, देते थे कोई मान नहीं।

असफल अतएव प्रशासन में, चंदेरी वापस लौट गया।
सूचना मिली, दिल्लीपति ने, ओरछा राज्य में मिला लिया।

चंपतराय और पहाड़ सिंह -

ओरछा मुगल-साम्राज्य बना, चंपत को दुःख विशेष हुआ।
लघु आत्मज पृथ्वीराज सिंह को,अस्तु पाट पर बिठा दिया।

घोषित ओरछा-स्वतंत्र पुनः मुगली-सत्ता-रेखाओं पर
आक्रमण शीघ्र आरंभ किए, मुगली-अधीन राजाओं पर।
आतंकित शाहजहाँ, अधिकृत ईर्ष्यालु नृपों की ले सहाय,
अपहृत कर पृथ्वीराज सिंह, ग्वालियर पठाया, कर उपाय।

विचलित-से चंपतराय, अपहरण-से नृप के कुछ विकल हुए।
अपने चरित्र-बल से परंतु,वे आत्मबली फिर सँभल गये;
सोचा 'स्वतंत्रता-सेवा में, नर जियें-मरेंगे कितने ही
कर्त्तव्य-पंथ पर डटे रहो, फिर श्रेष्ठ ईश की इच्छा ही,

दृढ़ता से अस्तु सँभाल लिया, ओरछा राज्य की बागडोर,
शाही सेना वापस भागी, तोबा-तोबा का हुआ शोर ।
फत्ते खाँ, बाकी खान आदि,सेनापति जो शहबाज खान ।
उल्टे पैरों रण छोड़ चले, चंपत का फहरा रण-निशान ।

लूटा विदिशा, सीरोंज, धार उज्जैन और धामोनी को,
पश्चात् ग्वालियर विजित किया, ऊँची करते संगीनों को ।
दिल्ली ने भेजा खान ज़हाँ, सेना देकर फिर से विशाल ;
अब्दुल्लाखान और सैयद, मुहम्मदबहादुर क्रूर काल ;

चंपत का कुछ भी कर न सके आक्रमण रहा निष्फल कराल
हो पुनः पराजित भाग गये, लज्जा से निज मुख किये लाल
यों चार बरस रण-रंग हुए, बुंदेल खंड में धमासान ।
हारों पर हारें झेल, हुआ था शाहजहाँ अति परेशान ।

देखा रण-कौशल चंपत के, निज आँखों से रण में विशाल,
उस स्वाभिमान के गौरव की, निस्वार्थ राष्ट्र की मुक्ति-ज्वाल,
निस्पृह उसकी वह स्वाभिभक्ति, वह राष्ट्र-शक्ति-गरिमा विशाल
बुंदेल धरा का वीरपुत्र, हिन्दू-गौरव का दीप्तभाल ।

था शाहजहाँ अति विवश, कूट छल का ही आश्रय शेष रहा
बुंदेलों में बस फूट डालने का संकल्प विशेष रहा;
दे पंच हजारी मनसब, दो सहस अश्व-सेनाधिकार,
जुज्झार-बंधु पहाड़सिंह को, ओरछा-नृपति कर स्वीकार ।

सोचा यह चंपत के विरुद्ध, इस नयी-व्यूह-संरचना से
ओरछा-हेतु आपसी द्वंद्व, मच जायेगा इस घटना से ।
निस्पृह पर चंपतराम रहे, समझे थे मुगल कुचालों को;
सुख-संपति की कब चाह रही, निस्वार्थ मातृ-भू-लालों को ।

इच्छा थी मात्र यही 'मुगलों' से विंध्यभूमि उन्मुक्त रहे ।
ओरछा-पाट वर-वीर सिंह के वंशज से संयुक्त रहे ।
वंशज पहाड़सिंह वीरसिंह का रहा, वही निजपरिवारी,
उसके विरुद्ध अब लड़ना क्या, जो हुआ ओरछा-अधिकारी ।

इस घटना के उपरांत अस्तु, अपना विद्रोह समाप्त किया ।
पहाड़सिंह से मिलन हेतु, ओरछा छोड़ प्रस्थान किया ।
चंपतराय आगमनसे, अति हर्षित हुआ पहाड़सिंह
आगे बढ़कर अगवानी की, ले मन में ईर्ष्या-भाव-बिंदु ।

यशगान चमूपति के व्यापक, संपूर्ण राष्ट्र की सीमा में;
थी मान-प्रतिष्ठा अतुल, वीर बुंदेलखंड की भूमा में ।
स्वातंत्र्य-व्रती सम्राट रहा, वह एक छत्र सब जन-मन का ;
उस मुक्ति-व्रती से मुगलभक्त, पहाड़सिंह की तुलना क्या ?

राजा होकर भी लब्ध हुआ, कब उसको अपना प्रजा-प्यार ।
जो वीर-व्रती था मुकुटहीन, जन-नायक था वह निर्विकार ।
पहाड़सिंह का मंत्री जो नसीमुद्दौला विश्वास-पात्र,
बस चंपत राय-विरुद्ध-कान-भरना था जिसका कार्य मात्र ।
था ज्ञात उसे यह भलीभाँति, ओरछा-नृपति औ' चंपत की ;
युति ने ही दोनों की सदैव मुगलों की भीषण दुर्गति की;
अतएव सुदृढ़-संकल्प रहा, उसका इस युति को तुड़वाना ;
संभव यदि, लड़ा परस्पर दोनों को ही ऐसे मिटवाना :
जो शत्रु-मित्र का स्वविवेक से भेद नहीं कर पाते हैं
वे अपयशभागी अल्पकाल में स्वयं वहीं मिट जाते हैं ।
हत रहा मनोबल से पहाड़, चंपत का यश सालता उसे;
इसलिए नसीमुद्दौला की मंत्रणा मान पालता उसे;
भय था पहाड़ को, चंपत ऐसा कार्य न कोई कर बैठे ।
हो जाय रुष्ट वह शाहजहाँ, गद्दी पर संकट आ बैठे ।
निज शक्ति-शौर्य से चंपत को, था कठिन दबाना किसी भाँति;
छल ही था मात्र उपाय एक,उनको कर देने को समाप्त ।
इसलिए मंत्रणा मंत्री की, करके कोई विश्वासघात;
निश्छल चंपत का, किसी भाँति चतुराई से करना निपात ।
जो हीन-भावना ग्रस्त, मनोबल हत, जिनमें हो प्रबल स्वार्थ,
ऐसे नीचों से सुहृद स्वजन, पाते केवल विश्वासघात ।
आमंत्रित भोजन-हेतु किया, नरपति पहाड़सिंह ने सत्वर ;
विश्वासी चंपतराय ओरछा में आये सहमित्र प्रवर ।
अति स्वागत मिला दिखावे का, पर भोजन में विषयुक्त थाल-
रखवा दी सन्मुख चंपत के, पर रक्षक-प्रभु की अन्य चाल ।
प्रिय बंधु भीम बुंदेला ने, परिवर्तित कर ली थाल किंतु;
विषमिश्रित अन्न-अशन करके परलोकपथी हो गए अस्तु ।
था प्रेम बंधु-द्वय में प्रगाढ़ चंपत मन में अति दुखित हुए ।
षड़यंत्र समझ सारा सतर्क, अब नीच नृपति से अधिक हुए ।
भेजा उसने हत्यारे को, अवसर-पा करने चला घात;
पर एक बाण से ही उसका, चंपत ने कर डाला निपात ।
परधर्मी का विश्वास, गुप्त-शत्रुता-पालना' होता है ।
जो मूर्ख-बुद्धि, ऐसे दुष्टों का सदा खिलौना होता है ।
इन महानीचतम कृत्यों से, चंपत नृप को पहचान गये;
पर अंतर्कलह मिटाने को, स्थिति को यों ही टाल गये;
उसकी रानी हीरादेवी, चंपत को शीघ्र मिटाने में ।
सक्रिय विशेष थी छत्रसाल को हानि सदा पहुंचाने में ।

अनबन बढ़ती ही गई, कहीं प्रतिशोध-भाव यदि भर लेते।
चंपत प्रवीर तो पल में ही, ओरछा हस्तगत कर लेते।
नर वे उद्देश्यों के महान, कब स्वार्थ रहा उनका अभीष्ट।
वे उच्च आत्मा के सुधीर, निज राष्ट्र-मुक्ति ही रही इष्ट।
भौतिक इच्छाओं के गुलाम, नर होते क्षुद्र-स्वार्थों के।
पर वीर-पुरुष-पुंगव महान, जीते महान उद्देश्यों से।
निज दूरदर्शिता से विचारकर, त्याग सभी अंतर्विरोध।
भेज़ा दिल्ली निज संधि-पत्र, हो गया 'शाह' का पूर्ण शोध।
समझा, शायद, ओरछा-हेतु, शरणागत चंपत हुए यहाँ,
उपयोगी अधिक पहाड़ सिंह से होंगे वे रणधीर वहाँ।
अतएव खुले दरबार मध्य, स्वागत दे पंचहजारी का।
मनसब प्रदान कर, मान दिया, सुप्रतिष्ठित निज दरबारी का
संप्रति उलझी थी मुगल सैन्य, कंधार-युद्ध में अतिभारी।
भेजा चंपत, दारा शिकोह को बना सैन्य-बल-अधिकारी
निज अतुलित वीर पराक्रम से, कंधार-विजय का पुरस्कार
मनसब पाकर बारह हजार, फिर बनें क्रौंच-जागीरदार
चंपत का प्रबल-विरोधी दारा था पहाड़ का सहयोगी
उन्नति में उनकी झुलस उठा, मन ही मन में वह अतिक्रोधी
लज्जित -सा उधर पहाड़ सिंह, चंपत के प्रति प्रतिरोध बढ़ा,
वर वीरसिंह की आन भूल, दारा-चरणों पर पाग धरा
जागीर क्रौंच की 'दारा' ने छीना, पहाड़ को सौंप दिया,
चंपत इस पर भी मौन रहे, किंचित भी नहीं विरोध किया,
लड़ कहीं परस्पर शक्ति हानि, थी इष्ट न उनको किसी भाँति
बुंदेलखण्ड के मुक्तिदूत के उर में रही न स्वार्थ - भ्रान्ति
देखा,पहाड़ सिंह के कारण, उसकी नीचता, विचारों से,
संगठन-भंग हो रहा, बढ़ रही फूट, नीच-व्यवहारों से,
अतएव महेवा चले गये चुपचाप, कलह का त्याग किया;
निज सहनशीलता से पहाड़ को,बार-बार यों क्षमा किया।
पर इसी समय उत्तराधिकार की झंझा दिल्ली में आई।
उस शाहजहाँ के पुत्रों में, संघर्षों की बेला आई।
था ज्येष्ठ, अस्तु था दारा पर, सारा दरबारी कार्यभार;
सहयोगी रहा पहाड़सिंह, संभावित था उत्तराधिकार,
महत्वाकांक्षी औरंगजेब, शत्रुता--हृदय में पाल रहा;
लघु-बंधु, किंतु सिंहासन पर, निज वक्र दृष्टि था डाल रहा;
अतएव विवेकी चंपत ने, गत-आगत और अनागत पर।
सम्पूर्ण रूप से कर विचार, दारा पहाड़ को दंडित कर -

अपना प्रतिशोध चुका लेने का, अवसर निज मन में आँका ।
निर्धारित भावी लक्ष्य किया, अवसर पर शत्रु ओर ताका ।
अरि का अरि अपना मित्र बना, सुविवेकी शोध लिया करते ।
इस राजनीति के कूट सूत्र को अपना, कार्य किया करते ।

धर्मत-रण में बस इसी समय जसवंतसिंह की हार हुई ।
दारा की चढ़ती कला देख औरँग-मन चिंता व्याप्त हुई ।
उसने स्थिति वश इसी समय, चंपत प्रवीर का ध्यान किया ।
दारा-विरुद्ध-रणनीति-बद्ध, सहाय्य हेतु याचना किया ।

काँटे से काँटा कढ़ता है, चंपत ने संपूर्ण विचार किया ।
संयोग अभीष्ट त्याग अनुचित, प्रस्ताव अस्तु स्वीकार किया ।
इस झगड़े से बुंदेलों की होगी-भी कोई हानि नहीं ।
प्रतिशोध चुकाने का सुंदर, अवसर इससे बढ़ अन्य नहीं ।

दतिया-नरेश शुभकरण संग, चंपत औरँग से अस्तु मिले ।
हो अति प्रसन्न उसने उनको खिलअत सुंदर रण-अश्व दिए ।
चंबल की विषम घाटियों में, औरँग-मुराद सह-सैन्य फँसे;
था मार्ग न कोई सूझ रहा, दारा से कैसे प्राण बचें ।

चंपत ने अस्तु सुरक्षित-पथ का, उसको कर निर्देश दिया
सकुशल दोनों ही निकल गये, दारा का संकट बढ़ा दिया ।
सामूगढ़ में फिर उभय मध्य, अति भीषण-तर संग्राम हुआ ।
चंपत ने मुअज्ज़म आजम सँग औरँग का पूरा साथ दिया ।

हो अति प्रसन्न, उसने उनको हाथी दे, मनसब-मान दिया ।
पद-भार विशेष सौंप उनको, लाहौर-क्षेत्र में भेज दिया ।
मुगली-सेवा-चाकरी किंतु, उनको न कभी-भी इष्ट रही;
अपना प्रतिशोध चुकाने की,केवल सहायता-इष्ट रही ।

निश्चल स्वभाव के मुक्ति-व्रती, वे वीर-व्रती रण-धीर रहे;
उनका महानतम सपना था, 'बुंदेलखंड स्वाधीन रहे ।'
लाहौर त्याग कर अस्तु वीर बुंदेलखंड को लौट पड़े ।
विद्रोही-असि ने शीघ्र वहाँ, अंबर में ऊँचे हाथ किये ।

चंपत के धावे के सन्मुख, मालवा-क्षेत्र असहाय हुआ,
अपनी भू पर, बल-पौरुष का, अपना सम्पूर्ण प्रभाव हुआ
चंपत के कारण विजय हुई दारा पर, औरँग था अवगत ।
उनकी स्वातंत्र्य-भावना से भी था वह भलीभाँति परिचित ।

था ज्ञात उसे यह हिन्दुवीर, अति-कुशल, हठीला, रण-प्रबुद्ध ।
रह नहीं सकेगा अधिक कहीं अब आगे हिन्दू-जन-विरुद्ध ।
सामूगढ़ रण में,अश्व मिला, अति-सुन्दर बाँका चंपत को,
औरँग ने माँगा, दिया नहीं, अपने उस युद्ध-हस्तगत को ।

शाही-इच्छा का रोध देख, औरँग मन ही मन खीझ गया।
होकर सतर्क रहना होगा, कुछ करना होगा ठान लिया।
बस इसी समय वह बंधु शुजा लेकर अपनी अति प्रबल सैन्य
आ डटा इलाहाबाद मध्य, औरँग से लड़ने को अचैन,
युद्धार्थ अस्तु उससे, चंपत को दिल्ली ने आदेश दिया;
चंपत को बुरा लगा, वापस सम्मान सनद सब भेज दिया।
स्वातंत्र्य-व्रती वीरों को कब, स्वीकार दासता होती है।
भुजबल के प्रबल पराक्रम से सत्ता की खेती होती है।
लौटे सनदें वापस देकर, भाण्डेर, एरच आधीन किया
एरच के दुर्ग बैठ अपना स्वाधीन-घोष नभ-ध्वनित, किया
क्रोधित मन ही मन औरँग अब, जाशुजा-युद्ध में उलझ गया।
बुंदेलखंड की मुक्ति हेतु, चंपत का नव उद्योग हुआ।
था समय कि हिंदू-राजे अब संगठन-शक्ति को सबल करें;
बुंदेलखंड को मुगलों के चंगुल से अब उन्मुक्त करे।
संकल्प उदात्त, परंतु सभी राजाओं में संकल्प कहाँ ?
जिनमें न आत्म बल, स्वाभिमान, उनमें पौरुष का कल्प कहाँ ?
औरंगजेब भी था सतर्क, -उसने अब मन में था ठाना।
उपचार सही होगा, केवल हिन्दू से हिन्दू मरवाना।
चंपत को भी था ज्ञात, बिना समुचित सहाय बुंदेलों की,
औरंग भी क्या कर सकता है, समता मेरे रणखेलों की।
हो उधर शीघ्र सिंहासनस्थ, औरँग ने निज योजना सहित
शुभकरण, इंद्रमणि, महासिंह भेजे विरुद्ध निज सैन्य सहित
सन्मुख रण में अब जो, चंपत के थे रण-ब्यूहों से परिचित।
यशमिला बारशः अस्तु उन्हें भी, किंतु न चंपत थे विचलित।
देखा औरँग ने महासिंह आदिक से बनता काम नहीं।
इसलिए विशाल वाहिनी सँग आया वह भी तत्काल वहीं।
भरती बुंदेली सैन्य किया, सेना-साधन थे अपरिमाण।
चंपत तो मात्र अकेले ही भिड़ रहे मुष्टिगत किए प्राण।
तब भी अविराम प्रवीर लड़े, करते वे सफल विरोध रहे;
अनुदिन रण-संगी जूझ रहे, साधन-अभाव से टूट रहे;
विधवा हीरादेवी पहाड़ की, आत्मज युवा सुजान सिंह;
सहयोगी बने मुगल-दल के, अब संकट से घिर गया सिंह।
सरदार अनन्य वीर धोखे से, मारे गये सुजान राय,
चंपत को दुख अपार हुआ, मन में करते रह गये हाय।
सहयोग दिया था जिनको भी, वे भी अब बने असहयोगी।
यह विधि-विडम्बना, दिन फिरते, फिर गये सभी जो सहयोगी।

चंपत के वीर सुपुत्र सभी, फिर भी युद्धों में भिड़े रहे;
निज पिता-सुरक्षा-हेतु, छत्र ने बढ़-चढ़ तीक्ष्ण युद्ध किए।
रक्षा-सहायता-हेतु छत्र, बहनोई के भी धाम गए ।
पर बहन न बोली मुख से भी, अतएव दुखी-मन लौट पड़े।

यह तो जगती की रीति रही, सुख में सब साथी होते हैं।
विपरीत समय में किंतु सभी, अपने भी पराये होते हैं।
अब शरण खोजते दुर्दिन में, अति ज्वर-पीड़ित चंपत-सुधीर,
निज मित्र इंद्रमणि धंधेरा के 'सहरा' पहुँचे महावीर ।

थे किंतु इंद्रमणि वहाँ नहीं, सहयोगी साहब सिंह मिला;
संकोच-सहित दी शरण, भला कुछ क्षण तो वहाँ विराम मिला।
अनुमान मित्र पर संकट का करके, निर्णय निज फेर लिया।
साहब-सहायता-हेतु 'छत्र' को 'सहरा' में ही रोक दिया

ज्वर-पीड़ित होने पर भी वे, सह-सैनिक मोरन-गाँव चले ।
'साहब' ने उनकी रक्षा-हित, दो सौ सैनिक कर साथ दिये।
कुछ सात कोस ही निकले थे, सह-मुगल आ गया अरि-सुजान।
संगी रणधीर धँधेरे थे, मच गया घोर रण-घमासान ।

ज्वर-पीड़ित निष्क्रिय-चंपत थे,बस चारपाई पर पड़े हुए ;
पति-रक्षा में थी लाल कुवँरि, अपनी कटार को तने हुए ।
रक्षा-हित रक्षक वीर लड़े, पर असफल सभी प्रयास हुए ।
झमकीं तलवारें 'झनन'-झनन', लड़ भिड़ रणधीर समाप्त हुए ।

थे अन्य धँधेरे पापी भी, सँग में, सुजानसिंह के साथी ;
विश्वासघात था हुआ बड़ा, थी अंतिम जीवन की झाँकी ।
रानी ने कर अनुमान लिया, अपने संभावित संकट पर ;
कुछ ही क्षण में निज पति के सँग, पड़ने वाली हैं अरि के कर।

अतएव बढ़ा निज अश्व शीघ्र, पहुँची जैसे पति के समीप,
अरि-सौनिक ने लीबाग थाम, ठिठका घोड़ा, था विवश, भीत;
रानी ने मारा सैनिक को,कुछ अन्य बढ़े लें बंदीकर ;
रानी ने भोंक कटार लिया, निष्प्राण टिकी अब घोड़े पर ;

'चंपत' ने देखा तो तुरंत, कर लिया आत्म-हत्या अपनी
प्रतिद्वंद्वी नीच घँघेरों की, सन्मुख थी घेरे खड़ी अनी ।
अरि के हाथों में जीवित तो, वे महावीर पड़ सके नहीं,
निज आन-बान की रक्षा में,अंतिम क्षण तक वे झुके नहीं।

निज यश की ध्वजा गगन को दे, निज कर्म-कथा इतिहासों को'
प्रिय मातृभूमि के चरणों पर, धर शीश, प्राण की स्वासों को;
प्रभु-शरण-चले वे कर्मवीर, युगदम्पति उड़कर हंस लोक
निष्प्राण पड़ा पार्थिव शरीर, अरि गर्वित थे जिसको विलोक

नीचों ने चंपत का 'शिर ले, प्रस्तुत दिल्ली दरबार किया,
जन-मन आतंकित करने का,दुष्टों ने क्रूर उपाय किया,
हो गया अस्त ज्यों सूर्य,वीर बुंदेलखंड की धरती का;
लुट गया वीर की मृत्यु-संग, स्वाधीन-धरा का वह शाका ।

जीवन भर जिसने युद्ध किया,जीवन भर जो स्वाधीन रहा,
विप्लव की लिए पताका जो, मुगलों के नहीं अधीन हुआ ;
जिसके प्रचंडतम भुजबल से, दिल्ली डगमग डोलती रही ;
सन्मुख आने में वीरों की, छाती धक-धक धड़कती रही;

जिसने हिन्दू-साम्राज्य-हेतु, संगठन शक्ति का नाम लिया;
उन धर्न-देश-द्रोही जनको, दंडित करने का काम किया ।
विश्वासघात से अपनों के, वह वृद्ध-वीर निरुपाय हुआ
अपनों के ही विद्वेषों से, भारत-विध्वंस सदैव हुआ ।

विप्लवी वीर-वर चंपत वह, रण-क्षेत्र मृत्यु-आलिंगन कर;
निश्चेष्ट पड़ा था मृत-शरीर, निज मातृभूमि के चरणों पर;
थी मातृभूमि ज्यों पिन्हा रही, लोचन भर यश की मालायें
इतिहास कर रहा अंकित था नरवीर सिंह की गाथायें ।

बुंदेलखंड की मुक्त-ध्वजा, रक्षित अब तक जिस भुजबल से,
अब नहीं रहा, नर वीर गया, धरती के आँसू छल-छल से
यह अपूर्णनीय क्षति, अनुभव कर, निष्प्राण हुआ बुंदेलखंड,
पौरुषहत राजे प्रणत हुए, मुगली चरणों पर भुगत दंड,

जन-जन को करता संत्रासित, इस्लामी अत्याचार बढ़ा,
व्यापक अरि-घेरा, चतुर्दिशा, ज्यों पापीजन-सिर पाप-चढ़ा,
रोये सब मानी हिन्दूजन स्मृति से योद्धा चंपत की,
देखा वीरों ने विच्छत छवि, अब अपने मानी गौरव की,

गौरवशाली इतिहास यही, निज राष्ट्र-धरा का जीवन है ।
निज स्वाभिमान्, दृढ़ आत्मा का संचित इसमें अमूल्य धन है।
जिन आत्म बली, उज्ज्वल चरित्र, मानी वीरों ने गढ़ा इसे,
अनुपम महान सत्कर्मों को इतिहासपर्ण ने पढ़ा जिसे

दृढ़ विश्वासों में उन्हीं बन्धु! अपना चरित्र निर्माण करो ।
अपने महानतम् कर्मों से इतिहासों में निजनाम वरो ।
अपना गौरवशाली अतीत, अपना राष्ट्रीय नियंत्रण है ।
ओ वीर युवक ! देता तुमको, गर्वित अतीत आमत्रंण है

यह दिव्य-धरा माता अपनी, इसके चरणों पर शीश धरो ।
उसकी रक्षा के लिए जियो, इसकी रक्षा के लिए मरो ।
वह जीवन क्या जिसने महान पूर्वज जन को भी नहीं पढ़ा ?
यह युवता क्या जिसने न नया गौरवशाली इतिहास गढ़ा ?



(४) छत्रसाल

(यदा-यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत)

जै राम-श्याम, जय चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, शिव, शत्रुसाल,
युग-पुरुष, धर्म-संस्कृति-रक्षक गोविन्द सिंह, जय छत्रसाल ।
अन्याय प्रपीड़ित, युग-पुकार, सुन करुणाकर-करुणा अपार,
अवतीर्ण हुआ करती जैसे हरती अवनी का पाप-भार ।

उत्पन्न यहीं होते महान, निज मातृभूमि के अंक खेल,
करते जन-जीवन-ताप दूर, निज महत् कर्म के खेल, खेल
उज्ज्वल चरित्र, शुचि ध्येयनिष्ठ साधना सिद्धि के कीर्तिमान ।
आदर्शगीत जिनके गाती, इतिहासों की वाणी ललाम ।

वे ज्योति पुरुष देते जग को तम-तोम-चीर, नूतन प्रकाश ।
उनके पौरुष की बाहों से, युग-जन पाते विश्वास-आस ।
ओ मातृभूमि मेरी महान ! ओ भारत की गरिमा विशाल ।
तेरे ही ही गोदी में खेले, अनुपम चरित्र नर रत्नलाल,

गलियों में गाते फिरते जो, गुण-गीत भंड वेश्याओं के ।
वे दृष्टिहीन क्या देखेंगे, गुण वीरों की आख्याओं के ।
जागो हर-हर ओ महादेव ! ओ महारुद्र! त्रयशूलपाणि !
ओ आदिशक्ति चंडी ! जागो, वह महाकाल की ले कृपाण ।

माँ क्या लिख दूँ ? कैसे लिख दूँ ? उद्विग्न धरा की परिभाषा,
हृदतंत्री डिमडिमनाद बने, लिखदे तलवारों की भाषा ।
मेरी वाणी में जाग उठे, गौरवभूषित भूषण वाणी,
तम तोम हरे शिव शक्ति बनी, जन-मन धरती की कल्याणी ।

ओ आदिकवे ! जागो लिख दो, लव-कुश की बाल कहानी को ।
ओ तुलसी ! राम-कथामृत से, तुम धन्य करो इस वाणी को ।
मुगली सत्ता का तेज बढ़ा, इस्लामी अत्याचार बढ़े,
हिन्दूबल, ईर्ष्या-द्वेष-फूट से, पतित पराजित बलि बकरे,

संपूर्ण देश हत-प्रभ विमूढ़, सा हत-बल हारा खड़ा रहा ।
विश्वासघात पा अपनों से वह राष्ट्रतेज था तड़प रहा ।
थी नहीं वीरता न्यून कहीं, सम्पूर्ण देश था शक्तिमान
पर जाँति-पाँति, प्रभुता-कुलीनता, स्वार्थ-वृत्ति जो अपरिमाण ।

संगठित न हुआ समाज, विधर्मी पद-तल-लुंठित क्रम-क्रम से
हो गया देश धन-धर्म-ध्वंस, स्वार्थी मूर्खों से, पापों से ।
संगठन हेतु जो अद्वितीय, चंपत से वीर सतर्क हुए,
प्रतिद्वंदी बुंदेलों की ही, प्रतिहिंसा के आखेट हुए,

वे ही थे केवल व्यक्ति दुखी, जिन देश-धर्म-संतापों से।
बुंदेलखंड की मुक्ति हेतु, आजन्म लड़े अरि-तापों से।
थे पापी नीच पहाड़-सदृश जिनको न देश की चाह रही,
चंपत प्रवीर की आत्मा ज्यों धरती पर पड़ी कराह रही।



वे महावीर चंपत जिनको, इतिहासों ने सम्मान दिया
हतभाग्य उन्हीं को अपनों ने विश्वासघात अपमान दिया।
ओ सोचो-समझो राष्ट्र-पुत्र ! यदि आर्य वंशधर भारत हो,
निज राष्ट्रभूमि के गौरव के, उठ तुम मानी उद्धारक हो।

उस वीर पुत्र 'सार वाहन' की आत्मा ने उनको स्वप्न दिया।
आऊँगा फिर माँ-अंचल में, उद्धार हेतु था कथन किया।
वीरांगना माता लाल कुँवरि, ले सत्वगर्भ, गृह थमी रही।
असि-कर प्रतिक्षण पति के सँग में, रणखेतों में ही रमी रहीं,

त्रैमास गर्भ ले छत्ता का, युग दंपति ककर कचनए में,
प्राणों का संकट, अकस्मात्, घिर गये शत्रु मुगलीदल में,
तत्काल तोड़कर घेरे को, पति-पत्नी वन को निकल गये,
मर-कट, करके सारे प्रयत्न, असफल अरि मलते हाथ रहे,

छै मास बिताये रानी ने, उस मोर पहाड़ी के वन में,
जन्मा शिशु भरता किलकारी, भारत-माता के अंचल में।
संवत् सत्रह-सौ छै, तृतीया तिथि ज्येष्ठ सुदी दिन शुक्रवार।
सन् सोलह सौ उन्चास ख्रीष्ट, दिन शुक्रवार, तिथि मई चार।

जन्मा वह वीर सार-वाहन, शायद बनकर शिशु छत्रसाल।
रणवीर पिता व बंधु-सदृश, उच्चाशय धर्मी शत्रुसाल।
पुलकित माता का दूध हुआ, अति पुलकित थी भारत माता।
हर्षित गिरि-वन सब कुहक उठे, जन-जन का मन-मयूर नाचा।

थे वीर-पिता अति व्यस्त, मुगल-दल से करते रण-घमासान।
वीरों की असि थीं चमक रहीं, छक्-छक् करती अरि-रक्त-पान।
था व्याप्त महारव, ढालों पर, झिलती थीं, वारों पर वारें।
झन्-झन्-झन् भड़के अस्त्रों की, सन्-सन् तीरों की बौछारें।

हौसले पस्त कर अरियों के, लप-लप बुंदेली-तलवारें।
रण-भेरी, ढोल-नगाडों की, गम-गम, वीरों की ललकारें।
अविरल कानों में गूंज रही, बंदूकों की वह ठॉय-ठॉय।
भर रहा धुवाँ रण-वन-थल में, व्यापक तोपों की धायँ-धायँ।

मारो-काटो, पकड़ों, छोड़ो मत अरि को, सब उच्चार रहे।
लपटें-झपटे योद्धाओं की, 'हर-हर-बम' के बमकार रहे।
हय हाथी ऊंट गिरे कितने, उठते-गिरते चिग्घाड़ रहे।
शुंडों से लिपटे योद्धा जो, करते व्यापक चीत्कार रहे।

बल-बला ऊँट संगीन झेल, रण अश्व-टाप फटकार रहे ।
रण-मस्त-वीर उड़-उड़ भिड़ते, वारों पर भर हुंकार रहे ।
जूझे वीरों के शव लेटे, थे बहा रहे निज रक्त धार ।
आहत थे पड़े कराह रहे, कुछ करते तीक्षण-चीत्कार ।
थी यही बधाई शिशु-प्रवीर के जन्म क्षणों की, संगर में ।
था जन्म-क्षेत्र वह युद्ध-क्षेत्र, छै माह युद्ध के अंबर में ।
पुरुषार्थ कुंडली बनी, वीर का भुजबल होगा अरि-तापी ।
निर्माण स्वयं ही कर लेगा । अपना स्वराज्य, ईश्वर-साक्षी ।
होते न पराजित कभी वीर, ऐसे अरिके कटु-तापों से ।
हरते अवनी का पाप-भार, अपने पौरुष के हाथों से ।
कोई न मार सकता उनको, उनके सिर प्रभु का हाथ रहें,
जो आत्म बली, संयमी, शूर, संतत् प्रभु उनके साथ रहे ।
थे सप्तमास के छत्रसाल, हो गई परीक्षा रण-थल की ।
शिशु था प्रसुप्त एकांत, सभी के सन्मुख भोजन-पत्तल थी ।
मुगली-सेना आ गई अचानक, योद्धागण-वन-ओर भगे ।
सह पत्नी चंपतराय सुरक्षित थल में जाकर कहीं छुपे ।
हड़-बड़ में भागे योद्धागण, था प्रश्न सुरक्षा का केवल ।
रह गया प्रसुप्त मात्र शिशु ही, सब सूना था भोजन-स्थल ।
मुगली सेना ने देखा तो, कोई भी तो था वहाँ नहीं ।
इसलिए शीघ्र ही अन्य दिशा, वह शत्रु खोजती निकल गई ।
अब लाल कुँवरि को ध्यान हुआ, अपने प्रियतम शिशु लाल हेतु ।
असि डाल म्यान में माँ रोई, हो रहा हृदय ज्यों टूक-टूक ।
चंपत को भी अब ध्यान हुआ, मन में वे भी हो गये विकल ।
शिशु पर ही कहीं न बरसी हो, अरि दुष्टों की असि-धार प्रबल ।
भेजे कुछ सैनिक शीघ्र पता करने शिशु का, उस स्थल में,
ले आये सोते छत्र-साल को गोदीभर, धर पलकों में ।
शिशु को सकुशल पा, माता को, सबको आनन्द-विशेष हुआ ।
रानी को नैहर जाने का, चंपत का फिर आदेश हुआ ।
हो गई परीक्षा थी जैसे शिशु की, भीषण रण-स्थल में ।
ईश्वर ने रक्षित किया उसे, संचित भविष्य-आशा जिसमें ।
अब चार बरस शिशु छत्रसाल अपने मामा के धाम रहे ।
हाथों सरके, घुटनों पर चल, हो गये खड़े, बलवान हुए
होते प्रसन्न किलकारें भर, गर्जन सुनते रण-तोपों का,
बढ़ रहे हाथ शस्त्रास्त्रों पर, असि खेल रहा उनके मन का ।
भाँजते तीव्र असि कौशल से, प्रत्यंचा पर धर लक्ष्य बाण ।
रण-कौशल का अभिनय करते, भावी योद्धा के ज्यों प्रमाण ।

हो सप्तवर्ष के छत्रसाल, अध्ययन हेतु गुरु पास गये ।
असि कौशल के ही साथ-साथ, कवि के भी सद्‌गुण प्रकट हुए ।
जन्मा सुरम्य जो प्रकृति अंक, वन-मोरों के सुन शब्द मान ।
हय-हाथी, सैनिक योद्धागण, असि भाले तीक्षण धनुषबाण ।

रँगती तूली थी अस्तु वही, रणतोपे, बाँके घुड़सवार ।
रण कौशल के ही साथ, कहीं था विकच सुधी वह कलाकार ।
देखे थे भिड़ते सुभट कहीं, देखा था बहती रक्तधार,
देखा बाँके रण-धीरों को, असि ढालें, धनु, बरछी, कटार,

विचलित न हुआ मन भयकातर, उस बाल-वीर का कभी कहीं,
मंदिर पूजा शुचि रामकथा, पांडव-गाथा रुचि पूर्ण रही,
हय चपल लिए रण-रंग-मस्त, बालकथा बाँका घुड़-सवार
असिम्यान कसी कटि से, दायें थी खुँसी भुजाली तीक्ष्ण धार

दस वर्ष बीतते बालवीर, रण-पारंगत था सुभट बना
आखेटक था वन-सिंहों का, था लक्ष्यबेध, अनुपम अपना ।
चेतन-गोपाल, के मंदिर में, हो ध्यान-मग्न बेसुध तन-मन ।
निज आत्म दृष्टि से पाया था, उन पार्थ-सारथी का दर्शन ।

युग महापुरुष, वह महावीर, बुंदेलखंड की ज्यों शाका,
माँ-बिंध्यवासिनी दुर्गा की, छाया में जन्मा रण बाँका ।
देखा मंदिर में बालक ने, भगवान राम की प्रतिमा को,
धनुधारी लक्ष्मण और संगिनी ऋद्धि-सिद्धि माँ सीता को ।

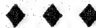
प्रतिमाओं की ऊँचाई भी, थी छत्रसाल के ही समान ।
उत्सुक बालक ने कहा, देखते क्या? खेलेंगे धनुषवाण ।
प्रतिमा के किन्तु न होंठ हिले, बालक के मन में हुआ क्षोभ,
वह निर्विकार का सरल भाव, बोला फिर मन में भरे क्रोध ।

इस बार नहीं यदि खेले तुम, तो मेरा शर यह तीक्ष्ण धार ।
बेधता तुम्हारा वक्षस्थल, जायेगा तत्क्षण कहीं पार ।
वह भक्तिभाव बालक अबोध, प्रतिमा सजीव था मान रहा,
अनुरोध स्वीकृत हुआ, भक्त के भावुक मन का मान रहा

हो गये सचेतन मूर्तराम, छत्ता सँग में धनु-क्रीड़ा की,
था लक्ष्य बेध में प्रबलभक्त, प्रभु ने स्व-आन की रक्षा की ।
छत्ता की भाव-समाधि रही, क्रीड़ा प्रभु की थी कृपादीन,
वह रही अतीन्द्रिय-तंद्रा-सी, छत्ता जिसमें थे हुए लीन ।

देखा स्थिति वह धनीभूत, जागृत तब किया पुजारी ने ।
था स्वस्थ सु-मन बालक पवित्र, था कृपा किया धनु-धारी ने

२२ फरवरी १९९४ (बुधवार)



५. आशा की किरण

ओ माँ ! तेरे शुचि चरणों का, मन में अप्रतिम आह्वान भरे
चल रही लेखनी मतवाली, निज मातृमही का मान भरे
माँ धर्म-धरा का क्या होगा, यदि जगा धर्म का भाव नहीं ?
उस धर्म भाव से क्या होगा? यदि जगी राष्ट्र की दाव नहीं ?

माँ देव-राष्ट्र का क्या होगा ? यदि जगी युवा-मन-ज्वाल नहीं?
इस मातृमही के संकट में, आई कर में करवाल नहीं ?
क्या जी सकता वह नर, जिसमें पौरुष का अनल प्रवाह नहीं ?
गौरवमय जीवन जीने को जिसमें मरने की चाह नहीं ।

वह जीवन क्या जिसमें जागृत, निज मातृभूमि का प्यार नहीं
वह जीवन क्या जिसमें, स्वदेश-सेवा कर्मठ-व्यापार नहीं ।
वह वाणी क्या जिसमें ज्वलंत जागृति का वह अंगार नहीं ।
जिसमें स्वराष्ट्र की सेवा में मर मिटने के उद्गार नहीं

वर दे, भर दे वे भैरव स्वर, सोये भारत के लाल जगें ।
ले धर्म-धरा फिर अँगड़ाई, भारत की पौरुष ज्वाल जगे ।
वर दे माँ ! टूटे जाति-पाँति, दृढ़ हिन्दु-संगठन जाग उठे ।
निज मातृमही की रक्षा में, पौरुष की धक्-धक् आग उठे ।

इस वेद-धरा पर ज्ञान जगे, जागे गीता का महा-ज्ञान ।
इस मानवता की धरती पर, गूँजे कण-कण में प्रणव-गान ।
ओ वीर युवक जागो-जागो, देखो भारत का अंधकार,
ओ पौरुष के साहसी ! जगो, कर दो किरणों का नवप्रसार ।

तुम वीर पूर्वजों का अपने, वीरो फिर-फिर इतिहास पढ़ो ।
अपने साहस, कर्मठता से, नव भारत का निर्माण करो ।
टी०वी० से, सिने-संस्कृति से, भंडों वेश्याओं-अनुकृति से ।
निश्चित विनाशमय भोग-रोग, देखो स्वराष्ट्र की दुर्गति से ।

षडयंत्र घोर, षडयंत्र घोर, जागो भारत के योग-ज्ञान ।
तज कामाचारी, श्वानभोग, जागो 'भू' के संयम महान !
तन-मन, नैतिकता से निर्बल, जी सकते क्या इस भूतल में,
सीमांत चतुर्दिक खड़े शत्रु, संगठित बनो निज जन-बल में ।

लक्ष्मण, लवकुश वे भीष्म, कर्ण, आदर्श तुम्हारे हनूमान,
माताएँ वे आदर्श, सजे जिनके हाथों में धनुष-बाण ।
निज अस्त्र-शस्त्र ले वीर ! उठो, माता दुर्गा नित कल्याणी,
तुम वीर शिवा के वंशज हो, बाँचो नित 'भूषण' की वाणी ।

नव-रात्रि-दिवस प्रारम्भ हुए, माँ दुर्गा की आराधना हेतु,
माँ विंध्य-वासिनी मंदिर पर, फहराया, रक्तिम-रंग केतु ।
औरंगजेब से प्रतिबंधित, मेला, मंदिर-पूजा सारी ।
बन रहा मूर्ति-भंजक मानी, सर्वत्र-सैन्य पहरेदारी ।

बुंदेलों ने अवमानित कर, राजाज्ञा का वह भय भारी,
की विंध्यादेवी की पूजा-मेले की पूरी तैयारी ।
सर्वत्र व्याप्त थी चहल-पहल, दर्शन-प्यासे जुड़ रहे भक्त,
निज अस्त्र-शस्त्र का साज धरे, बुंदेले योद्धागण समस्त ।

आराध्या देवी मंदिर पर दर्शन पूजा के हेतु डटे ।
भय था, आयें न मुगल कहीं, इस हेतु सुरक्षा-वीर डटे ।
समुपस्थित चंपतराय धर्म-धरती के संकल्पी-रक्षक
आश्वस्त सभी थे भली-भाँति, क्या कर सकते मुगली तक्षक ?

उल्लास असीम प्रहर्षित नभ, गुंजित माँ की जयकारों से ।
था वीर रक्त ज्यों-उमड़ रहा, असिपूजा के उपहारों से ।
चढ़ रहे नारियल भेंट, पुष्प-मालाओं के थे बोझ-लदे ।
भक्तों की अभिलाषाओं के, अक्षत-चंदन घृत-दीप सजे ।

जगमग सिर-पागों के समीप मस्तक पर रोली, शुभ-चंदन,
शुचि भक्ति भाव से विनत सभी माँ चरणों का करते वंदन ।
ग्यारह वर्षी युवराज बाल, आये तेजस्वी छत्रसाल,
सहबाल संग, सैनिक-वेशी, कटि में कृपाण, स्कंध ढाल ।

पदत्राण उतारे, प्रक्षालित पग-हस्त, लिए डलिया किशोर,
चल पड़े, पुष्प-चयनार्थ, सभी माँ पूजाहित, वाटिका ओर ।
थे लौट रहे, सुन पड़ीं उन्हें, हय-टापें, आये मुगल-असुर ।
पूछा- 'क्योंरे छोकरे ! बता, 'देवी-मंदिर है कहाँ, किधर ?'

पूछा बालक ने - 'क्या तुम भी आये माँ की पूजा करने ?'
'क्या बुत - परस्त हैं काफिर हम ? आये मूरत खंडित करने ।'
डलिया सौंपी निज साथी को, छत्ता ने काढ़ी निज कृपाण,
'अपशब्द' दुबारा मत निकले, सुनले ओ काफिर मुसलमान !

उपहास पूर्वक कहा - 'अरे क्या करलेगा छोकरे बोल ?
धँस गई तीक्ष्ण असि छत्ता की मरगिरा मुगल, थे बंद बोल,
दो चार अन्य जो, थे अवाक्, मारा छत्ता ने उन्हें झपट,
बलि के बकरे दाढ़ी वाले, जो शेष बचे, भागे सरपट ।

सहबालों ने भी दौड़ शीघ्र, बतलाया तत्क्षण मंदिर में,
लौटे तलवारें तनी लिए, अपने साथी का बल भरने ।
मंदिर से दौड़े, बुंदेले, ललकार लगाते अरियों को ।
आश्चर्य-चकित देखा, छत्ता आते थामें असि, डलिया को ।

पीछे मृत मुगली-सैनिक जो, कह रहे कथा च्यों छत्ता की,
सब ओर प्रशंसा व्याप्त हुई, बालक की वीर-महत्ता की ।
सबने बालक को उठा, प्यार से छाती से निज लगा लिया,
मस्तक चूमा, बल-भुजा-चूम, अंतर्मन से आशीष दिया ।
विश्वास हुआ बुंदेलों को, चंपत-प्रतिनिधि यह जन-नायक ।
रणधीर केशरी बालवीर होगा भावी सेनानायक ।
आशा की भरी निगाहों ने, भावी के अंबर में झाँका,
नव विभा-किरण किरणाकर की, आई हरने तम भारत का ।
इस धर्म देश की रक्षा अब होगी इनवीर भुजाओं से,
माँ विंध्य-वासिनी कल्याणी, आशीष लिए मनसाओं के ।
(प्रातः ३-२-६४)
चंपत को गर्व हुआ, होगा यह वीर पुत्र अति रण-बाँका,
आया शायद सारवाहन ही, हरने संकट भारत माँ का ।
प्रिय पुत्र ! वीर चंपत बोले, दे दिया मुझे संतोष अमित,
तुमने निज अतुल पराक्रम से, मुझको कर हर्ष-विभोर-चकित,
मैंने जीवन भर-युद्ध किया, निज धर्म-धरा की मुक्ति-हेतु ।
संकट पर संकट झेल सदा, फहराया अपना मुक्ति-केतु
ये धर्म-निष्ठ बुंदेल वीर, चिंतित, मेरे उपरांत कौन ?
नेतृत्व करेगा वीरों का, रक्खेगा उन्नतभाल कौन ?
मिल गया एक उत्तर सबको, हिन्दू-सेवक रणधीर मिला,
चिंता अब नहीं मृत्यु की, जो मुझको आशा का तीर मिला ।
कुछ धीर-वीर लड़ रहे साथ, अधिकांश साथ हैं मुगलों के
जो मुझे सौंपना चाह रहे, जीवित या मृत, कर मुगलों के ।
वह नीच आत्म-द्रोही मेरा, आत्मज पहाड़ का, पितु-समान ।
मेरे पीछे ही पड़ा हुआ, ले मुगल-सैन्य-बल अपरिमाण ।
हम वृद्ध हुए, अब शक्ति प्रथम, कुछ शेष नहीं है इस तन में,
कब तलक अकेले लड़ सकते, अरियों से, चिंता थी मन में ।
जो कुछ संभव था जीवन में, झेलते कष्ट, सब किया, सहा,
कुछ करने की अब शक्ति कहाँ ? मुझसे कुछ संभव नहीं रहा ।
मैं देख रहा, अति प्रबलशत्रु, छुट-पुट इन इतर आक्रमणों से,
क्या हिन्दुधर्म होगा रक्षित, छलिया मुगली - संक्रमणों से ?
यह कार्य अकेले के वश का है नहीं समझ लो वीर पुत्र !
समवेत संगठित हिन्दू-बल, बाँधेगा अपना मुक्ति-सेतु ।
दक्षिण में वीर शिवाजी हैं, उनसे मिलना हे वीर-पुत्र !
उनके उद्योगों को विलोक, निश्चय दृढ़ करना वीर पुत्र !
रजपूताना, बुंदेल खंड, महाराष्ट्रवीर जो देश भक्त,
संघर्षी राष्ट्र-प्रवीरों से मिल, करना निज योजना-व्यस्त ।

कल पुनः जा रहा युद्ध-हेतु, क्या जाने क्या होगा रण में,
लौटूंगा या फिर नहीं, मातृ-भू-सेवा के भीषण क्षण में,
आशीष हमारा पुत्र तुम्हें ! विजयी हो भावी जीवन में,
माँ विंध्य वासिनी की छाया हो सिर पर, संकट के क्षण में ।

गंभीर भाव से छत्ता ने, स्पर्श पिता के चरण किए ।
हिन्दुत्व - सुरक्षा - व्रत होगा, प्रतिक्षण जीवन का ध्येय हिए ।
वह नीच विधर्मी मुगल शत्रु-बल, नाश करूँगा भुजबल से ।
अविराम घोर संघर्ष छेड़, प्रण-पूर्ण करूँगा कौशल से ।

माँ ने बतलाया - 'मुगलों द्वारा ही मृत्यु हुई थी भय्या की ।
आये थे नीच यहां खंडित करने प्रतिमा वह मय्या की ।
सर्वत्र हिन्दु-जन का विनाश, सर्वत्र धर्म का महानाश ।
व्यापक जन-हाहाकार घोर, खल विहँस रहे कर अट्टहास ।

इन नीच विधर्मी असुरों से, आजीवन कर संग्राम घोर,
दिखला असि-कौशल कर दूँगा, मुगली, सत्ता को चूर-चूर ।

X X X

आश्वस्त पिता चल पड़े उधर, संयोजित रण-अभियान लिए ।
छत्ता भी निज-योजना-सहित, गंभीर हृदय में भाव भरे ।
युद्धाभियान में सहरा तक, निज रुग्ण पिता के साथ रहे ।
आज्ञा से किंतु पिता श्री की, 'सहरा' में ही वे ठहर गये ।

युद्ध-योग में किंतु वहाँ से, बहनोई के धाम गये ।
पर बाहन न बोली मुख से भी, लौटे सब भाँति निराश रहे ।
इस जगती की है रीति यही, सुख में सब साथी होते हैं ।
विपरीत समय में किंतु वही, अपने भी पराये होते हैं ।

X X X

आगे थे बढ़े, सुरक्षा-हित जब चंपत मोरन गाँव ओर,
विश्वासघात में जूझ गये, पापी सुजान-आक्रमण घोर ।
इस घटना का संदेश मिला, छत्ता को सहरा में ही था
अब माता-पिता गये जग से, मन में दुख तो अति गहरा था ।

इस समय आयु में छत्ता थे, साढ़े बारह वर्षी किशोर,
सिर से छाया उठगयी, घिरे संकट के बादल सभी ओर ।
वह परम ज्योति देती तम में जीवन की संतत ज्योति प्राण,
अपनी ही सद्इच्छानुरूप, ईश्वर ही सबका सुखद त्राण ।

इस कोमल वय में, पिता-मातु-श्री का अंतिम संस्कार किया,
विधि की विडम्बना, निस्सहाय बालक-मन आह ! विदीर्ण किया ।
कच्ची मिट्टी के बने नहीं थे, किन्तु वीर वर छत्रसाल ।
मुगलों के प्रति प्रतिहिंसा की, जागी हिन्दू-मन-विषम-ज्वाल ।

आँधी जो शीघ्र बुझादेती, लघुदीपक सहज झकोरे से,
कर देती किंतु प्रचंड अमित, दावाग्नि प्रचंड थपेड़े से।
आँधी - सी दी उनके उर में, दमनों ने, अत्याचारों ने,
थे लगे तौलने मन में ही, बल कितना असि की धारों में।

शायद प्रभु की इच्छा ही थी, झेलें वे इतने महाकष्ट,
निज देश जाति की सेवा-हित, निज तन-मन से वे बने पुष्ट।
निज राष्ट्र धर्म की रक्षा का, उनके हाथों से महत्कार्य,
होना भविष्य में था शायद, प्रभु की इच्छा ही सतत् धार्य।

जो महत् पुरुष, यह नियम अटल, संकट उनके सिर पड़ते हैं।
सत्साहस के जो वीर, झेल, विजयी बन स्वयं निखरते हैं।

(४ फरवरी शुक्रवार ६४)



६-ध्येय-पथी

गर्भिणी मातु-श्री साथ रहीं पति के यौद्धिक उपचारों में,
रण-क्षेत्र मध्य ही जन्म हुआ, शिशु पला तीव्र असि-धारों में,
संस्कार दिया था शिशु-मन को, माता के युद्ध-विचारों ने,
संघर्ष घुला था जीवन का, उन उष्ण दुग्ध की धारों में ।

अति बाल्यकाल से साहस का, वीरता-बुद्धि का पौरुष था,
परिचय था दिया मनोबल का, अपनी असिधारी दृढ़ता का ।
पितु-माता की शुचि राष्ट्र-भक्ति, अंतर अंगडाई लेती थी ।
वह जन्मजात योद्धा, जिसकी विजिगीषा खरी बपौती थी,

देखा था रहकर पिता-संग, इस्लामी अत्याचारों को,
संकीर्ण अंध-धर्मिता, मूढ़ भोगी, अराष्ट्रीय आचारों को,
धूर्तता-नीचता पापी की, छल-कपटपूर्ण मक्कारी को,
देखा था करते भग्न मूर्ति-मंदिर, अपमानित नारी को,

देखा था अमित अकल्पनीय, दंडों का करते वे विधान ।
आहत हिन्दू-जन-मन टूटा, था शेष नहीं कुछ परित्राण ।
अज्ञानी था सारा-समाज, क्षुद्रता व्याप्त राजाओं में ।
संगठन-ओर था ध्यान कहाँ, बल रहा न शेष भुजाओं में ।

अतएव जगी छत्ता-उर में, प्रतिहिंसा की वह वन्य-ज्वाल,
ज्यों सिंहवाहिनी हुंकारी, असुरों की बनकर महाकाल ।
जीवनभर नग्न कृपाण लिए, मुझको रण में रहना होगा,
असुरों का करके नाश, मातृ भू-मुक्ति वरण करना होगा ।

धन-धर्म-धरा-मर्यादा को, भारत की संस्कृति की रक्षा,
करना होगा आजन्म मुझे, माँ चंडी ! दे भुजबल-दीक्षा ।
होते जो कर्मठ महावीर, दृढ़-संकल्प उन्हीं में होते हैं ।
अपने महानतम पौरुष का, परिचय शैशव से देते हैं ।

वे आत्मबली जन्मा करते, प्रभु-इच्छा का आदेश लिए,
युग-पुरुष वही होते जिनमें जगते महान-संकल्प हिए ।
वे महाव्रती खींचते अमिट, अवनी पर ऐसी रेखायें,
युग-युग की लहरें गातीं, जो इतिहासों में यश-गाथायें ।

संकट पर संकट आते हैं, पर धीर न विचलित होते हैं,
दृढ़-साहस, घोर-पराक्रम से, तूफानों को जय करते हैं ।
निज राष्ट्र-धर्म जन-सेवा में, जिनकी हुंकार मुखरती है,
उन पराक्रमी नर-वीरों की, जगती यह पूजा करती है ।

माता जी और पिताश्री का, जब निधन हुआ तब छत्रसाल,
असहाय रहे, धन-सैन्य-रहित, कोमलवय शोकाकुल, विहाल ।
तबभी स्वधैर्य दृढ़-साहस से, मन को रखा अपने सँभाल,
निर्देशित यथा पिताश्री से, दृढ़ संकल्पित उर-प्रखर-ज्वाल ।

अंगद, गोपाल व रतनशाह, त्रय सगे बंधु थे अन्य रहे,
कुछ परामर्श, यौद्धिक-प्रयास के भाव-हृदय में उदित हुए ।
उद्विग्न-हृदय, आक्रांतभीड़ भावी-जीवन-चेष्टाओं की,
थे सोच रहे, पथ पर बढ़ने की, आँधी मन में भावों की ।

निज पिता-सहायक एक वृद्ध-सैनिक के फिर वे धाम गए,
निज पिता-तुल्य ही मान उसे, झुक सादर उनके चरण हुए ।
था सैनिक वीर प्रसन्न, छत्र को निज छाती से लगा लिया,
पुत्रवत् स्नेह दे, रखा, हृदय से भूरि-भूरि आशीष दिया ।

कुछ दिन ठहरे तो छत्रशाल का शोकाकुल-उर शांत हुआ,
भावी जीवन की दिशा-दृष्टि से मन जैसे निर्भ्रान्त हुआ ।
उपरांत, महेवा पितृ-ग्राम, अपने चाचा के पास गये ।
शुचि शिष्ट भाव से छत्ता ने, झुक सादर उनके चरण छुए,

अति हर्षित हुए सुजानराय, सुनते जिसको, सामने वही,
स्नेहातिरेक से गले मिले, फिर कुशल क्षेम की बात हुई ।
कुछ समय रहे, फिर चाचा से, उद्देश्य एक दिन प्रकट किया,
मुगलों से युद्ध-योजना की अपनी दृढ़ इच्छा व्यक्त किया ।

संकल्प ज्ञात कर छत्ता का, पितृव्य हृदय में घबराये,
तू अल्प-वयस, साधन-विहीन बेटा ! क्यों मन को भरमाये ?
वे महाशक्ति हैं भारत की, संगठित दुष्ट वे सत्ता में,
करते भारत का क्रूरदमन, अपनी धार्मिक बर्बरता में,

मुगलों से लेना बैर मोल, अविवेकपूर्ण होगा अनर्थ,
सुख-शाँतिपूर्ण जीवन भोगो, मत पालो यह कल्पना-व्यर्थ ।
चाचा की ऐसी बातों से, छत्ता का मन अति व्यथित हुआ ।
खाते-पीते यों पड़े रहें, इस हेतु न उनका जन्म हुआ ।

दृढ़ लक्ष्य प्राप्ति के हेतु अस्तु, संयत मन से करके विचार,
निज ज्येष्ठ-बन्धु 'अंगद' से मिलने गये शीघ्र देवगढ़-द्वार ।
लघुभ्राता को पा परम हर्ष से पुलकित अंगदराय हुए ।
पद छूने को झुक रहा अनुज, अग्रज अगोरता उसे हिए ।

प्रेमाश्रु उमड़ भूपर बिखरे, युग-बंधु मिले इस भाँति वहाँ ।
थी चित्रकूट घटना नवीन, ज्यों राम-भरत का मिलन वहाँ ।
युगबंधु-मिलन वर्णनातीत, भावुक-सनेह का सेतु रहा,

क्रमशः छत्ता ने व्यक्त किया, किन भीषणतम स्थितियों में,
धांधेरों के विश्वासघात से मातृ-पितृ जूझे रण में ।
कहते-सुनते दोनों ही की डबडबा उठीं, भीगी आँखें,
व्याकुल ज्यों उर के घाव दुखे ! अंतर्मन की टूटी पाँखें ।
अंगद को अनुभव हुआ, आज जैसे वे निपट अनाथ हुए,
तब भी स्वधैर्य-परिचय देते, लघुभ्राता से ये शब्द कहे ।
''भय्या छत्ता ! वे दुष्ट मुगल, हो रहे प्रबल अति क्रम-क्रम से
बल-पौरुष होते हुए, टूटते जाते हम सब हत-बल से ।
क्या कर लेंगे हम, जब अपने ही, नहीं कर रहे कुछ विचार ।
मुगलों के संगी बन करते, निज धर्म-जाति का यों सँहार ।
क्या कहें परस्पर विग्रह की, स्थितियों से हम विवश हुए ।
लघु स्वार्थों से संगठन-हीन, लड़ हिन्दु-परस्पर टूट रहे ।
विह्वल भ्राता को धैर्य बँधाते, छत्ता ने उत्साह दिया ।
आई विपत्ति में धैर्य, बुद्धि, साहस, विवेक उद्‌बुद्ध किया ।
''हम वीर पिता के वीर-पुत्र, पौरुष-उद्यम का ध्येय करें,
मुगलोच्छेदन कर मुक्त बनें, निज पितृ-कार्य को पूर्ण करें ।
अंगद बोले भय्या छत्ता ! कक्काजू के उपरांत कौन -
हमको पूछेंगे भला कहाँ ? सब अपने-अपने स्वार्थ-मग्न ।
'कक्काजू के जीवन में ही, सत् पंथ-विरोधी थे कितने ?
दंपति पहाड़ ने द्वेषपूर्ण बध-हेतु किये थे छल कितने ?
आत्मज उनका ही तो सुजान, कक्काजू का जो मृत्यु - हेतु !
बुन्देलों के ही विश्वासघात से टूट गिरा वह मुक्ति-केतु
अच्छा इससे तुम भी मेरी ही भाँति नौकरी करो यहाँ,
इन व्यर्थ प्रपंचों को विचार, संकट लेना है उचित कहाँ ?'
छत्ता को पीड़ा हुई कहा - 'वे मछली, हिरन और सज्जन,
करते न किसी की हानि, मात्र जीते, कर भक्षण वन के तृण ।
तब भी तो उनका बध करते, मछुआरे, बधिक और दुर्जन ।
कक्का जू का जो किया, हमें भी छोड़ेंगे क्या पापीजन ?
इसलिए विचारों स्वाभिमान, उद्देश्य छोड़ना उचित कहाँ ?
हम क्षत्रिय, संकट - संघर्षों - मरने से डरना उचित कहाँ ?
प्रतिशोध-हेतु हम मुगलों से, उद्यम से सेना गठित करें,
यवनों के अत्याचारों से, निज मातृभूमि को मुक्त करें ?
उद्यम ही एक उपाय, उठो, संगठन-शक्ति को सुदृढ़ करें ।
अपने असिधारी भुजबल से, निज आन-प्रतिष्ठा वरण करें ।
मुगली-सेना का भेद-व्यूह भी लेना होगा, शक्ति-तोल,
भरती हो उनकी सैन्य मध्य, निर्बलताओं को पढ़ें खोल ।

इस भांति धैर्य-साहस छल-बल-कौशल-निष्ठा से कर उपाय,
संगठित शक्ति करना होगा, दुर्गामाता होंगी - सहाय ।'
पौरुष का किए भरोसा-जो सत्पथ पर चरण बढ़ाते हैं,
उनके भुजबल में अनायास, अगणित भुजबल जुड़ जाते हैं ।
दृढ़-निश्चय, कर्म-पथी-सन्मुख अवरोध कहाँ टिक पाते हैं ।
दृढ़-व्रती वीर ही, दृढ़ निश्चित निज लक्ष्यों पर जय पाते हैं ।
हो गए अस्तु सहमत दोनों, अंगद ने देखा-छत्ता में,
दृढ़ शक्ति नई जगमगा रही, उसके अंतर की दृढ़ता में ।
गौरवशाली भविष्य गढ़ने को, उठ दोनों कटिबद्ध हुए ।
भारत का भाग्य जगा जैसे, कर दोनों के असि-बद्ध हुए ।
दृढ़-व्रती-वीर-युवजन-बल से, धरती का भाग्य सँवरता है,
दृढ़ आकांक्षी कर्मठता का इतिहास स्वयं ही बनता है ।
युग-बंधु हो गये उद्यत अब, पौरुष का झंझा मचल उठा,
बलिदान पिता का माता का, प्रतिशोधज्वाल बन धधक उठा ।
वे शौर्य-शिरायें फड़क उठीं, उत्साही साहस गरज उठा,
मुगलों व मुगल समर्थक जो, उनको असि बल ज्यों वरज उठा
ठहरो, अब संभलो युद्ध हेतु, ज्यों युगल बंधु ललकार उठे,
माँ चंडी के ज्यों युगल सिंह, गह्वर से भर हुंकार उठे ।
सहयोग सहाय-शक्ति-धन का था अभी नितांत अभाव रहा,
इसलिए प्रथमतः स्थिति को समुचित सँभालना भाव रहा ।
अनिवार्य सैन्यबल-हेतु शीघ्र व्यय-धन-प्रबंध करना समुचित ।
माँ के प्रदत्त सब अलंकार, थे दैलवाड़ में संरक्षित
ले आये उनको छत्रसाल, विक्रय कर, धन एकत्र किया,
कुछ उद्भट वीर-संगठन का, छत्ता ने प्रथम प्रयास किया ।
हो चुकी प्रथम ही छत्ता की मँगनी पँवार-कुल-कन्या से,
वीरांगना, पतिव्रता, अनुचारिणि, उस देव कुँअरि-सी धन्या से ।
छत्ता थे पूर्ण अनिच्छुक-से, वैवाहिक-बंधन-चाह न थी ।
यौद्धिक जीवन के संकट में, झोंकें 'पर' को, यह चाह न थी ।
तब भी निजबंधु, श्वसुर गृह का, स्व-वचन रक्षा प्रस्ताव रहा,
हो गया प्रणय-बंधन इससे, वह नैतिक प्रबल दबाव रहा ।
गाजे-बाजे, बारात, प्रदर्शन का कुछ नहीं स्वरूप रहा,
नव-दम्पत्ति का यह प्रणय-सूत्र-बंधन साधारण रूप रहा,
असि-जीवी उन प्रणवीरों का, उन वीर-व्रती रण-धीरों का,
रण-क्षेत्र प्रणय-थल, मंडप-शुचि सजता झन-झन असि तीरों का ।
वीरांगना सासु-माँ की जैसी, वह देवकुँअरि भी सिद्ध हुई ।
जो छत्रसाल के सुख-दुख की, सहभागिनि-संगिनि बनी रही ।

नवजीवन अब प्रारंभ हुआ, युगदम्पति का, पर रानी ने -
विचलित होने था दिया नहीं, व्रत से पति को क्षत्राणी ने ।
प्रेरणा बनी-सी सदा रही - 'कक्का जू का व्रत पूर्ण करो ।
प्रतिपल सहायिका पग-पग मैं, जैसा चाहो आदेश करो ।
इच्छा मेरी यह नहीं, रहूँ गृह-भोगिनि या मैं अबला बन,
क्षत्राणी हूँ, जीवित रहना मैं चाह रही क्षत्राणी बन ।''
सम्पन्न हो चुका पाणि-ग्रहण, युगबंधु उठे हो असि-धारी
निर्धारित निज योजना-सहित की ध्येय पूर्ति की तैयारी,
आशीष प्राप्ति के हेतु युगल, निज कुलगुरु 'मान' पुरोहित का
आये उनके घर धर्म मान, पर मिला उन्हें केवल धोखा,
श्री-हीन और संपति-विहीन का मान, मान में रहा नहीं ।
लालची गिद्ध उस बाँमन ने, की छत्रसाल से भेंट नहीं ।
पुरुषार्थ विक्रमी, भिक्षार्थी, होता पर किसके द्वारे पर,
वह जीता वन-केशरी-सदृश, अपने पौरुष के अर्जन पर,
निज मान-प्रतिष्ठा-हेतु कभी, जाता न गीदड़ों के समीप,
उसके उस दीप्त पराक्रम के, सन्मुख झुक आते सब विनीत ।
उगता प्राची में सवित बिम्ब, लेकर स्वतेज का नव-प्रसार,
उसके प्रताप से छिन्न स्वयं हो जाता सारा अंधकार ।
खुल जाते सारे सुप्त-नयन, कुक्कुट-प्रभात आगमनालाप ।
पौरुष का वृष उठता डकार, पुरुषार्थ-पुजारी जुड़े साथ ।
पुरुषार्थी नर-केशरी वीर चलते निज पथ पर वक्षतान ।
निजविक्रम का कर्तृत्व अमर, लिखते इतिहासों में प्रमाण ।
छाना सारा बुंदेलखंड, राजाओं जागीरदारों से ।
मिलभेंटे, चर्चा की, दुख जो मुगली-सत्ता अतिचारों से ।
'किस भाँति मिट रहे हिन्दूजन, ढह रहा मंदिरों संग धर्म ।
किस भाँति मिट रहे धर्मवीर, क्रूरतापूर्ण-बध मुगलकर्म ।
स्थितियाँ ऐसी विषम, संगठन हीन हिन्दु का जन-समाज ।
लड़-स्वयं परस्पर मिटा रहे, निज को, एवं अपना समाज ।
यदि यही रहा, तो निश्चित ही, यह धर्म-देश मिट जायेगा,
वह नाम मात्र को भूतल में, हिन्दू न शेष बच पायेगा ।
मर रहे पृथक जो शूर-वीर, जो हुआ ओरछा-नृपति-हाल ।
विश्वासघात से अपनों के, चंपत प्रवीर का कटा भाल ।
बस वही हाल होगा सबका, इसलिए धर्म की है गुहार,
इसलिए जगो, संगठन करो, कुछ करो, यही युग की पुकार,
हम उद्धत पूरी शक्ति लगा, कुछ करने को, तुम दो सहाय ।
इस राष्ट्र-कार्य में जुड़ो बंधु, निज धर्मत्राण का हो उपाय ।

सब सहमत उनकी बातों से, माना स्वदेश के संकट को,
थे दुखी, धँधेरों ने मरवाया, ज्यों रानी को चंपत को,
संवेदनापूर्ण-आँसू-बरसे, कुछ राजा जागीरदारों के
सहभागी से सब लगे, शोक-संतप्त हृदय-उद्‌गारों के ।

दोनों को ढाढ़स बँधा, बैठ जाते लेकिन हो शांत मौन ।
टूटे मन, मुगलों के विरुद्ध हथियार उठायें कहाँ ? कौन ।
असमर्थता प्रकट की युद्ध-हेतु, आश्वासन भी कुछ दिया नहीं,
कुछ बोले भावुक अल्प-वयस, है राजनीति का ज्ञान नहीं ।

सर्वत्र निराशा मिली अस्तु, मौखिक ही मिली, सहानुभूति ।
दुख हुआ, देश के चिंतन को, संवेदन को, ज्यों लगी छूत ।
दोनों ने अनुभव किया, दुर्दशा देख देश की आँखों से
युग मुगल-विरोधी बाँधव को, सब टाल रहे थे बातों से ।

आतंकित राजा, जन-समाज, सब मुगली अत्याचारों से ।
भयभीत आत्म-विश्वास-हीन, निर्बल निज कूट विचारों से ।
क्यों मुगल-विरोधी संकट लें, देकर छत्ता को कुछ सहाय,
सब बने आत्म-हंता बैठे, था शेष न साहस-शौर्य हाय !

वह रही पुरानी पीढ़ी जो, निर्वीर्य और निस्तेज हुई,
निज राष्ट्र-धर्म-हित करने का कुछ ओज रहा था शेष नहीं ।
संतोष यही बुंदेलखंड में राष्ट्र-सँदेशा पहुँचाया,
ठहरे पर सोच - 'मुक्ति - संघर्षी शायद समय नहीं आया' ।

चंपत के देश-प्रेम त्यागी, जीवन की विशद प्रशंसा से ।
अभिभूत रहा बुंदेलखंड, पर दुखी, वीर की अंत्या से ।
असमर्थ रहे पर कुछ कहने-करने में खुल करके सारे ।
जो रहे प्रशंसक अंतर से, चुप बैठ गये थे मन मारे ।

साहसी किन्तु कुछ हो प्रसन्न, छत्ता को वीर विचार रहे,
निज देश-धर्म की रक्षा-हित भावी-नेतृत्व निहार रहे ।
दोनों भाई भी पुनः लौट, अपने मामा के धाम गये,
आगामी कुछ तैयारी का लेकर, अपना आयाम गये ।

नाना अस्त्रों व शस्त्रों के, संचालन में अति निपुण हुए,
अश्वारोही बन अति प्रवीण, रण-कौशल के वर-वीर हुए ।
अभ्यास मल्ल-बल का करके, हो गये शक्तिशाली सुगठित,
की समवयस्क युवकों की भी, टोली वैसी ही शीघ्र गठित ।

व्यवहार रहा सुंदर उनका, आकर्षक था व्यक्तित्व अमित,
था देश-धर्म की पीड़ा का, हरने का अंतर्भाव निहित,
हो रहे प्रभावित वीर युवक, तेजस्वी सब रणशूर जमें,
विश्वासी साथी छत्ता के भावी नायक रणधीर बने ।

छत्ता के हित जो प्राणों की बाजी ले रण भिड़ने वाले,
निज धर्म-देश की रक्षा में, निर्भय मरने-मिटने वाले ।
निश्चिंत उधर ते मुगल हुए, चंपत का ज्यों अवसान हुआ,
समझे, सारा बुन्देलखंड, नर-वीर-हीन, वीरान हुआ ।
राजा जो शेष, मुगल-सत्ता के दास सभी बन जायेंगे,
चंपत के पुत्र हताश सभी, आतंकित सिर न उठायेंगे ।
पर गुप-चुप अंगद-छत्ता की, चल रही योजना भारी थी ।
निज शक्ति, सैन्य-बल-कौशल की होती रण की तैयारी थी ।

(बसंत पंचमी १५-२-६४ मंगलवार)



७-दक्षिण-पथ

हो चुका व्याह, अब छत्ता भी अग्रज अंगद के साथ सगे।
पौरुष-परिमार्जन-हेतु कहीं तैयारी की सोचने लगे,
युगबंधु गये, फिर जामशाह चाचा से मिलकर चर्चा की,
सहमत तीनों ने मुगल-सैन्य में भरती होने की इच्छा की,

वैसे मत था यह छत्ता का, हम मिलें क्यों न शिव-सेना में,
वे महा यशस्वी हिन्दु-वीर, बल दें उनके अभियानों में,
गौरव की होगी बात, अगर हम हिन्दू-बल के साथ मिलें,
अपने पौरुष की दे सहाय, मुगली-सत्ता का नाश करें।

हिन्दुत्व-सुरक्षा-हेतु पिता ने जीवन-भर संघर्ष किया।
स्मरण उन्हें था जो कि विधर्मी-नाश-हेतु उपदेश दिया,
था परामर्श यह भी, मिलकर तुम वीर शिवा की ले सहाय,
उनके निर्देशन में करना, तुम मुगल नाश के सब उपाय।

पर सिद्ध व्यक्तिगत स्वार्थ कहो शिव-साथ कहाँ हो पायेंगे ?
पितु-हत्यारे धांधेरों से, प्रतिकार कहाँ ले पायेंगे ?
प्रतिशोध मातु-पितु हत्या का, संघर्ष विधर्मी मुगलों से,
दो इष्ट ध्येय थे अस्तु, वीर छत्ता के अपने जीवन के।

पर थीं कठिनाइयाँ समक्ष संगठित सेना कुछ भी पास न थी,
अति-प्रबल मुगल-सैनिक साधन, रणनीति आदि कुछ ज्ञात न थी।
कैसे सैनिक - सेना नायक, आयुध-बल-तोपें घुड़ सवार,
संचालित करते युद्ध, घेरते दुर्ग आदि वे किस प्रकार।

उनके विरुद्ध-संघर्ष-पूर्व, सब शत्रु-भेद वे चाह रहे,
पर वह सब संभव हो कैसे ? मन में कुछ यही विचार रहे।
जो बिना बिचारे जा भिड़ते, उत्साही अति आवेशी - रण,
निश्चित ही हानि उठा, बनते वे स्वयं पराजय के कारण।

जो सुधी-शूर निज शत्रु-शक्ति का कर लेते पूर्व समाकलन,
होकर अभिज्ञ अरि-कौशल से, पश्चात् उठाते सफल-चरण।
दृढ़ उद्देश्यों के व्रती वीर, जिस-लक्ष्य-सिद्धि-पथ पग धरते
ईश्वर-अनुकम्पा से वैसे-साधन, शुभ-अवसर, आ मिलते।

ईश्वर-इच्छा से अस्तु शीघ्र, बस इसी समय अवसर आया,
वरवीर शिवा की हलचल से, औरंगजेब था घबराया।
हो गये पराजित जितने भी भेजे, सैनिक दल, सुबेदार,
दुर्दशा हुई शाइस्ता की, अति प्रबल शिवा-असि का प्रहार।

मुगली सत्ता के हेतु विकट थे प्रबल चुनौती एक शिवा
'अतएव प्रयत्न करूँ दृढ़तम' मन में उसने संकल्प किया।
औरंगजेब अति धूर्त-कुटिल, हिन्दूजन का अति विद्वेषी,
हिन्दू से हिन्दू लड़वाना, थी नीति कुटिल उसकी ओछी।

उसका दरबारी पराक्रमी था कछवाहा जय सिंह नृपति,
अतएव विचारा उसको ही शिव के विरुद्ध भेजना उचित।
सम्मान-दिखावा कई बार करके, दरबारी-दास बना,
रखा था उसको पास किन्तु, अंतर से था विद्वेष-मना।

जयसिंह चतुर था शक्तिमान, इसलिए उसे था भय उससे।
हो जाये कभी विरुद्ध, त्राण होगा फिर कैसे संकट से।
तन गई कभी तलवार कहीं, औरंग के शिर पर यदि उसकी।
सामना करेगा कौन वीर ? ऐसी हिम्मत थी ही किसकी ?

अतएव सोचकर जयसिंह को, दक्षिण का सूबेदार बना,
भेजा उसने शिव-दमन-हेतु, 'शर एक लक्ष्य दो' लक्ष्य बना।
दाऊद, दिलेर खाँ, इहतिशाम, जयसिंह सिसोदिया, खाँकुबाद,
राजा सुजानसिंह, कीरति सिंह, मुल्ला यहिवा कर दिया साथ।

आये अनेक जागीरदार, रजपूती राजे बन संगी।
हय-हाथी, तोपें, अस्त्र-शस्त्र, जयसिंह चला, ले चतुरंगी।
जैसे ही यह विज्ञात हुआ, दक्षिण-पति हो जयसिंह नरवर,
जा रहा शिवाजी के विरुद्ध, छत्ता ने सोच लिया अवसर।

'रजपूती-सेना, मुगल सैन्य यद्यपि, पर है जय सिंह नायक,
हिन्दू ही है, रहकर संगी, होगा अनुभव अपने लायक।
संभव यदि हुआ, सँभाल उन्हें, कर हिन्दु-पक्ष में बलशाली,
निज देश-धर्म पर छाई जो, कर दूँ विनष्ट सत्ता काली।

चल साथ, पहुँच जाऊँगा मैं दक्षिण-पति शिवराजा समीप,
खोजूँगा मिलने का अवसर, चर्चा कर शिक्षा हित पुनीत।
अतएव सुअवसर व्यर्थ न कर, अंगद से कर पूरी सलाह,
भेजा जयसिंह के पास, साथ ही थे चाचा जी जामशाह।

नर्मदा - निकट वे दोनों ही, जयसिंह सेना में युक्त हुए।
सोलहवर्षी वे छत्ता भी, रजपूती-सैन्य-नियुक्त हुए।
कोमल-किशोर वय यद्यपि थी, पर दीर्घ डील अति शक्तिमान।
वे पराक्रमी रण-सिद्ध-शूर, लगते पचीस के पहलवान।

जयसिंह-छत्ता में पटी, वचन मिल गया, देखकर रण-कौशल
मनसब मिल जायेगा, सवार रखने का होगा हक हासिल।
रजपूती-सेना में दिलेरखाँ की, 'नायक' - स्थान मिला।
बस इसी समय ही दिल्ली से - 'खाँ' को शाही फरमान मिला।

छिदवाडा का देवगढ़-दुर्ग भी छीन, करो आधीन अभी,
विद्रोही कूरम-कल्ल नृपति, 'कर देना' जिसका बंद सभी।
लूटता मुगल-सत्ता-प्रदेश, शाही कोषों को, जनता को।
हो रहा निरंकुश, घोषित कर, 'स्वाधीन शाह' भी जो निज को।"
भेजा दिलेर के संग, वीर छत्ता को, मिर्जा जयसिंह ने,
मित्रता पाग-बदलौवल की, की थी दिलेर ने चंपत ने।
अतएव प्रसन्न विशेष हुआ, अपने संग में पा छत्ता को।
अंगद प्रवीर, भट जामशाह, समझे जो शौर्य - महत्ता को।
घिर गया अस्तु देवगढ़-दुर्ग, मुगली-सेना से संकट में,
अरराई तोपें धुवाँधार, गोली-गोलों के झुरमुट में।
झन-झना म्यान से असि निकली, भाले उचके अंबर निहार
टंकारें कार्मुक, बरस पड़ीं, सन्-सन् तीरों की तीव्र-धार।
दृढ़ दुर्ग रहा, की थी अच्छी, कूरम ने भी रण-तैयारी।
पग-पग पर योद्धा-कुशल जमे, मोर्चा-मोर्चों पर रण भारी।
रण-शूर, साहसी, पराक्रमी, भिड़ गये कुंत, असिभल्ल तीर,
बढ़ लगे काटने मुगलों को, कौशल के बाँके सुभट धीर।
हो रहा व्यर्थ रण-संगर में, शाही-गोला-बारूद सभी,
होकर निराश ज्यों लौट-भगे, 'अल्ला-तोबा' कर मुगल सभी,
टूटे दिलेर खाँ के मन के, ढीले-से थे अरमान सभी,
अब हो निराश ज्यों लौट पड़ा, छूटा 'जय का अभियान सभी।'
यह देख रोष-पूरित छत्ता, क्रोधित केहरि-सा तड़प उठा,
विश्वास पात्र ले सैन्य वीर, तत्क्षण ही अरि पर टूट पड़ा।
नवयुवक, वीरता की उमंग, भर कोक सिंह की सेना पर,
टूटा, बाँकुरा, न देखा फिर, थी तोप किधर, तलवार किधर ?
विश्वासी सैनिक वीर सुभट, रण-नायक के ही साथ बढ़े,
अद्‌भुत रण की तलवार बजी, दुर्द्धर्ष-समर के ज्वार चढ़े।
भाई अंगद को, चाचा को, रक्षित करता, वह वीर बढ़ा,
छप-छप तलवारें संगीनें, अरिदल की छाती चीर बढ़ा।
खेलता समर का खेल, शत्रु गाजर-मूली-सा काट रहा,
उत्तुंग लहर-सा लहर वीर, लाशों से धरणी पाट रहा,
बढ़ गया अकेले ही आगे, छत्ता को निज का ध्यान नहीं,
रण-रंग-मस्त असि नाच रही, था रक्षा का संज्ञान नहीं।
छूटे पीछे ही सैन्य-सुभट, अग्रज अंगद व जामशाह।
थी एक अकेली असि फिरती, करती विदीर्ण अरि दल-उमाह।
कट रहे सामने रण बाँके कोका के जितने सुभट भिड़े,
था वरद शक्ति का छत्रसाल, असि काली की ज्यों विकट, अरे।

देखा दिलेर ने छत्रसाल, ले मुट्ठी भर सैनिक-प्रवीर,
किस प्रबल पराक्रम, कौशल से, धँस रहा शत्रु का वक्ष चीर ?
ललकारा मुगल-सैन्य-दल को, 'ओ कहाँ कायरो ! भाग रहे,
लौटो, छत्ता को दो सहाय, पीछे हट क्यों रण छोड़ रहे ।

लौटी जब तक वह मुगल सैन्य, हो पराभूत वह कोक सिंह,
कर आत्म-समर्पण, छत्रसाल के सन्मुख बेवश झुका सिंह ।
हो गई किन्तु अनहोनी यह, कूरम की टुकड़ी भाग एक ।
लौटी लेने को शरण दुर्ग भीतर, घटना तब घटी एक ।

उसके नायक ने पीछे से, छत्ता की गर्दन पर प्रहार -
कर दिया, गिरे हय से नीचे, विछुआ से रक्षित यद्यपि वार ।
आघात किन्तु था प्रबल, छत्र बेसुध भू-पर पड़ गये वहीं,
लौटी, विजयी हो, मुगल-सैन्य, पर छत्ता का कुछ ध्यान नहीं ।

बज उठे विजय-धौंसा धम-धम, झूमते मुगल कर सुरा पान,
खुश थे - 'हिन्दू ने हिन्दू को, कर दिया पराजित' मात्र ध्यान ।
जयसिंह भी तो हैं क्रीत-दास-शाही का, रहता चरण चूम ।
हम शासक हैं हिन्दू-जन पर, हम मुगल, शक्ति सत्ता असीम ।

पर जीते जिसके विक्रम से, उसके जीवन का मोल कहाँ ?
काँटे से काँटा निकल गया । मुगली सत्ता का खेल जहाँ ।
मिल रहे गले रजपूत वीर, मन में विजयी उल्लास भरे,
नायक छत्ता का पता नहीं, पर, छाना सबने शिविर अरे

यह वली बहादुर जो दिलेर, कितना कृतघ्न रे ! नीच अरे !
औरंगजेब तो पाजी ही, मक्कार, धूर्त कह सभी फिरे ।
निज प्यास-नींद व विजय भूल, नायक दिलेर की ओर चले ।
पर धुत्त नशे में एक मुगल-अधिकारी के ये बोल कढ़े ।

"भग चले देवगढ़िये ज्योंही, हम बीस सिपह ले दौड़ पड़े,
पर पकड़ न पाये, सूर्य अस्त, हो चली धुंध, हम लौट पड़े ।
देखा सुंदर हय युद्धभूमि में, मरा पार्श्व में घुड़सवार,
कर स्वामि-सुरक्षा रहा वहाँ, निश्शंक युद्ध-थल के मँझार ।

आते समीप कुत्ते-सियार, हिनहिना दुलत्ती रहा झाड़ -
हम पकड़ न पाये अस्तु उसे, करके प्रयत्न सब गये हार,
बतलाना जब सो जाय कभी अति निशामध्य वह निश्शंका,
हम पकड़ उसे ले आयेंगे, सुंदर सुपुष्ट हय रण बंका ।"

सैनिक प्रवीर सब छत्रसाल के, समझ गये जो बात सही,
वह वीर अश्व है छत्ता का, नायक मेरे रणधीर वहीं ।
तत्क्षण छत्ता की दिशा चले, सब युद्ध भूमि के मध्य वहीं,
भर गये हृदय वह दृश्य-देख, था स्वामि भक्त हय खड़ा वहीं ।

छिदवाडा का देवगढ़-दुर्ग भी छीन, करो आधीन अभी,
विद्रोही कूरम-कल्ल नृपति, 'कर देना' जिसका बंद सभी।
लूटता मुगल-सत्ता-प्रदेश, शाही कोषों को, जनता को।
हो रहा निरंकुश, घोषित कर, 'स्वाधीन शाह' भी जो निज को।''

भेजा दिलेर के संग, वीर छत्ता को, मिर्जा जयसिंह ने,
मित्रता पाग-बदलौवल की, की थी दिलेर ने चंपत ने।
अतएव प्रसन्न विशेष हुआ, अपने संग में पा छत्ता को।
अंगद प्रवीर, भट जामशाह, समझे जो शौर्य - महत्ता को।

घिर गया अस्तु देवगढ़-दुर्ग, मुगली-सेना से संकट में,
अरराई तोपें धुवाँधार, गोली-गोलों के झुरमुट में।
झन-झना म्यान से असि निकली, भाले उचके अंबर निहार
टंकारें कार्मुक, बरस पड़ीं, सन्-सन् तीरों की तीव्र-धार।

दृढ़ दुर्ग रहा, की थी अच्छी, कूरम ने भी रण-तैयारी।
पग-पग पर योद्धा-कुशल जमे, मोर्चा-मोर्चों पर रण भारी।
रण-शूर, साहसी, पराक्रमी, भिड़ गये कुंत, असिभल्ल तीर,
बढ़ लगे काटने मुगलों को, कौशल के बाँके सुभट धीर।

हो रहा व्यर्थ रण-संगर में, शाही-गोला-बारूद सभी,
होकर निराश ज्यों लौट-भगे, 'अल्ला-तोबा' कर मुगल सभी,
टूटे दिलेर खाँ के मन के, ढीले-से थे अरमान सभी,
अब हो निराश ज्यों लौट पड़ा, छूटा 'जय का अभियान सभी।'

यह देख रोष-पूरित छत्ता, क्रोधित केहरि-सा तड़प उठा,
विश्वास पात्र ले सैन्य वीर, तत्क्षण ही अरि पर टूट पड़ा।
नवयुवक, वीरता की उमंग, भर कोक सिंह की सेना पर,
टूटा, बाँकुरा, न देखा फिर, थी तोप किधर, तलवार किधर ?

विश्वासी सैनिक वीर सुभट, रण-नायक के ही साथ बढ़े,
अद्भुत रण की तलवार बजी, दुर्द्धर्ष-समर के ज्वार चढ़े।
भाई अंगद को, चाचा को, रक्षित करता, वह वीर बढ़ा,
छप-छप तलवारें संगीनें, अरिदल की छाती चीर बढ़ा।

खेलता समर का खेल, शत्रु गाजर-मूली-सा काट रहा,
उत्तुंग लहर-सा लहर वीर, लाशों से धरणी पाट रहा,
बढ़ गया अकेले ही आगे, छत्ता को निज का ध्यान नहीं,
रण-रंग-मस्त असि नाच रही, था रक्षा का संज्ञान नहीं।

छूटे पीछे ही सैन्य-सुभट, अग्रज अंगद व जामशाह।
थी एक अकेली असि फिरती, करती विदीर्ण अरि दल-उमाह।
कट रहे सामने रण बाँके कोका के जितने सुभट भिड़े,
था वरद शक्ति का छत्रसाल, असि काली की ज्यों विकट, अरे।

देखा दिलेर ने छत्रसाल, ले मुट्ठी भर सैनिक-प्रवीर,
किस प्रबल पराक्रम, कौशल से, धँस रहा शत्रु का वक्ष चीर ?
ललकारा मुगल-सैन्य-दल को, 'ओ कहाँ कायरो ! भाग रहे,
लौटो, छत्ता को दो सहाय, पीछे हट क्यों रण छोड़ रहे ।

लौटी जब तक वह मुगल सैन्य, हो पराभूत वह कोक सिंह,
कर आत्म-समर्पण, छत्रसाल के सन्मुख बेवश झुका सिंह ।
हो गई किन्तु अनहोनी यह, कूरम की टुकड़ी भाग एक ।
लौटी लेने को शरण दुर्ग भीतर, घटना तब घटी एक ।

उसके नायक ने पीछे से, छत्ता की गर्दन पर प्रहार -
कर दिया, गिरे हय से नीचे, विछुआ से रक्षित यद्यपि वार ।
आघात किन्तु था प्रबल, छत्र बेसुध भू-पर पड़ गये वहीं,
लौटी, विजयी हो, मुगल-सैन्य, पर छत्ता का कुछ ध्यान नहीं ।

बज उठे विजय-धौंसा धम-धम, झूमते मुगल कर सुरा पान,
खुश थे - 'हिन्दू ने हिन्दू को, कर दिया पराजित' मात्र ध्यान ।
जयसिंह भी तो हैं क्रीत-दास-शाही का, रहता चरण चूम ।
हम शासक हैं हिन्दू-जन पर, हम मुगल, शक्ति सत्ता असीम ।

पर जीते जिसके विक्रम से, उसके जीवन का मोल कहाँ ?
काँटे से काँटा निकल गया । मुगली सत्ता का खेल जहाँ ।
मिल रहे गले रजपूत वीर, मन में विजयी उल्लास भरे,
नायक छत्ता का पता नहीं, पर, छाना सबने शिविर अरे

यह वली बहादुर जो दिलेर, कितना कृतघ्न रे ! नीच अरे !
औरंगजेब तो पाजी ही, मक्कार, धूर्त कह सभी फिरे ।
निज प्यास-नींद व विजय भूल, नायक दिलेर की ओर चले ।
पर धुत्त नशे में एक मुगल-अधिकारी के ये बोल कढ़े ।

"भग चले देवगढ़िये ज्योंही, हम बीस सिपह ले दौड़ पड़े,
पर पकड़ न पाये, सूर्य अस्त, हो चली धुंध, हम लौट पड़े ।
देखा सुंदर हय युद्धभूमि में, मरा पार्श्व में घुड़सवार,
कर स्वामि-सुरक्षा रहा वहाँ, निश्शंक युद्ध-थल के मँझार ।

आते समीप कुत्ते-सियार, हिनहिना दुलत्ती रहा झाड़ -
हम पकड़ न पाये अस्तु उसे, करके प्रयत्न सब गये हार,
बतलाना जब सो जाय कभी अति निशामध्य वह निश्शंका,
हम पकड़ उसे ले आयेंगे, सुंदर सुपुष्ट हय रण बंका ।"

सैनिक प्रवीर सब छत्रसाल के, समझ गये जो बात सही,
वह वीर अश्व है छत्ता का, नायक मेरे रणधीर वहीं ।
तत्क्षण छत्ता की दिशा चले, सब युद्ध भूमि के मध्य वहीं,
भर गये हृदय वह दृश्य-देख, था स्वामि भक्त हय खड़ा वहीं ।

वह देख उन्हें सूंघने लगा, समझा सब अपने सैन्यधीर,
करवट ली छत्ता ने, झरने से जल ले आये दौड़ वीर ।
मुख धो, जलपान करा, धीरे से अश्वचढ़ा, छावनी चले ।
जिसने भी सुना, सभी के मुख से, अश्व-प्रशंसा-शब्द कढ़े ।
की बड़ी प्रशंसा घोड़े की, सुनकर यह वली बहादुर ने,
पर भुला दिया यों छत्ता को, जैसे अदना सैनिक रण में ।
कर सुरापान सिंहासन पर, शेखी था बड़ी, बघार रहा,
जैसे उसने ही विजय किया हो दुर्ग-देवगढ़, हाँक रहा ।
अपनी शूरता - वीरता का, देवगढ़ विजय का श्रेय पूर्ण -
लिख दिया, पत्र फिर औरंग को, पर छत्रसाल का नाम शून्य ।
पाया औरँग से मान-पत्र, वह अधिक बड़ी जागीर मिली,
घायल मन को पर छत्रसाल के, उससे व्यापक पीर मिली ।
थी विजय-देवगढ़ प्राप्त हुई, छत्ता के प्रबल पराक्रम से,
पर फल-श्री मिली दिलेरखान को, छत्ता ज्यों निकले भ्रम से ।
चल पड़ा शीघ्र दल ले दिलेर, मिलने दक्षिण जयसिंह दल से,
कर पराभूत पथ के कितने हिन्दू राजे, निज-दल-बल से ।
पौरुष दिखलाते रहे छत्र, पर उनको ज्यों अभिशाप मिला -
हिन्दू-वीरों को पराभूत, करने का, केवल पाप मिला ।
"कितने कृतघ्न ये मुगलनीच, मन में रह-रह आते-विचार
इन दुष्टों से पुश्तैनी - ही, शत्रुता रही अपनी-अपार,
साँपों को दूध पिलाने से, अमृत-रस कब मिलने वाला,
वे हैं तो नीच विधर्मी ही, उनसे कब हित होने वाला,
है हिन्दूबल निस्तेज हुआ, इसलिए महीपति मुसलमान,
दिल्ली पति बन धर्मांध, कर रहा हिन्दु-धर्म को श्मशान ।
सोचा था आकर यहाँ, हिन्दु-मानस परिवर्तित करने का,
कुछ तो प्रयत्न कर देखूँगा, हिन्दू-मन जागृत करने का,
सौभाग्य कि हिन्दू-सैनिकगण, कुल भावित मुझसे हुए यहाँ,
मेरे प्रयत्न का पुरस्कार, कुछ तो मिल पाया मुझे यहाँ,
'कक्का जू' बस इसीलिए, उन हिन्दु विरोधी मुगलों का,
जीवन-भर करते नाश रहे, थे दीप जलाये हिन्दू का,
हिन्दू कुल-भूषण उन प्रवीर, चंपत का होकर पुत्र हाय !
धिक्कार मुझे, कर रहा नीच, मुगलों की यह कैसी सहाय ?
मेरी असि से हो गया शून्य, अंचल कितनी माताओं का ?
धो गया भाल-सिंदूर, आह ! कितनी हिन्दू-ललनाओं का
मेरे ही हाथों ध्वस्त हुआ साहस, स्वधर्म, बल, हिन्दू का ।
मेरे ही हाथों भ्रष्ट हुआ शाका हिन्दू नरपतियों का

यह स्थिति मेरे योग्य कहाँ ? कक्का जू की आत्मा कैसे ?
हो रही दुखी, होगी कितनी, लज्जित मेरे इन कृत्यों से ?
मैंने जो इतना युद्ध किया, जो इतना हिन्दू-नाश किया,
वह सब किसके लिए किया, पापी मुगलों के लिए किया
उन मुगलों के हित जो भारत, हिन्दू-संस्कृति के शत्रु रहे ।
योजना-बद्ध जो हिन्दु-धर्म, देवालय करते ध्वस्त रहे ।
मूर्तियाँ तोड़ पग के नीचे, जो हँस-हँस कर कुचलते रहे,
हिन्दू-नारी, पावित्र्य-भंग, कौमार्य छीन खेलते रहे ।
रथ-यात्रा, मेले विद्यालय, वेदादिक धर्मग्रंथ जितने,
सब कर निरुद्ध, कर भस्मसात, जितने पवित्र-स्थल अपने,
उन दुष्टों का, उन असुरों का, बन रहा सहायक मैं कैसे ?
अब शीघ्र यहाँ से मुक्त बनूँ, मिल सकूँ शिवा से हो जैसे ?
वे महापुरुष अवतारी हैं जन्मा था जो बचपन महान ।
दृढ़-संकल्पों की दूर-दृष्टि - ज्यों हिन्दू-गौरव का प्रमाण,
अति जागरूक हिन्दू-जन के - संगठन - हेतु योजना लिए,
अपने प्रबुद्ध अभियानों में, निज देश-धर्म की आन लिए,
कर रहे शक्ति से वीर शिवा, मुगलों के गौरव को समाप्त
भरते प्रकाश ज्यों भारत में, अपने पौरुष का भर प्रताप
आदर्श बने थे अस्तु शिवा, छत्ता-मन के वे पूज्य वीर
उन्नत-चरित्र साहसी-कर्म, खींचते मुक्ति की ज्यों लकीर
उमड़ती रही श्रद्धा मन में, उत्साहित प्रेम-शिराओं में ।
शिव-दर्शन की लालसा प्रबल, उमड़ी थी कितने भावों में ।
लगता था ज्यों आघात घोर, उनके विरुद्ध यह युद्ध पाप
इन नीच विधर्मी मुगलों के, संग में रह लड़ना महापाप
क्या किया नहीं? कर रहा नहीं क्या? औरंग हिन्दू-नाश हेतु
बुंदेल खंड-संगठन नष्ट, करने वाला वह राहु-केतु
जो सच्चरित्र धर्मी बनता, पापी वह कितना दुश्चरित्र
बुरहानपुर हीरा बाई - हिन्दू गायिका का सतीत्व ।
जैनाबादी महल नाम से, कर रखैल, सब भाँति भ्रष्ट
पीता था जिसके हाथों से, रंगरेली करता रहा इष्ट ।
वह असुर आज कर रहा आह ! उस भारत भू को यो विनष्ट,
यों सोच न जाने मेरा मन क्यों टूट रहा, हा ! महाकष्ट ।
थे समा गये ज्यों जीवन में, छत्ता के वे आदर्श शिवा,
संकल्प सुदृढ़ हो गया, मिलन-उत्कंठा से भर गया हिया ।
दो माह यात्रा हुई, पहुंच, पूना-परिसर जय सिंह गया,
शिव से बेवस, जसवंत सिंह से, कुल अधिकारी भार लिया ।

आगे बढ़ शीघ्र सबल उसका, पड़ गया 'पुरंदर-गढ़' घेरा,
वीरता दिखाई तीनों ने, जयसिंह प्रसन्न, पौरुष हेरा ।
तीनों को मनसब घुड़सवार दे, संस्तुति-स्वीकृति औरँग से,
उन्नति ली सबने, अपने ही, अनुपम साहस रण कौशल से ।

अनुशासन राष्ट्र-धर्म-सेवा में, प्राणों का उत्सर्ग लिए,
लड़ रहे मराठे वीर विकट, रणदेख, मुगल-बल चकित हुए ।
देखा उन मुगली आँखों ने, रणधीर-वीर बाजी मुरार,
रणशूर मावलों की असिके, देखे अति तीक्षण विकट वार ।

गोरिल्ला छापा मार रहे, मुगली सेना अति परेशान,
मुट्ठीभर सैनिक दुर्ग घिरे, कर रहे युद्ध अति घमासान ।
रक्षक-दल का गढ़भार छोड़, 'बाजी' कर अरि का व्यूह पार,
अरि-सेना को करता विनष्ट, बढ़कर दिलेर पर किया वार ।

कट गया शीश, पर खड़ा रुंड, तलवार फेरता यवनों पर
देखा सबने हो चकित, शूर जब गिरा मातृ-भू-चरणों पर
तत्क्षण गढ़ से ललकार उठी, सुन ले जो मुल्ला काजी है
रण-जौहर आगे देखोगे, प्रत्येक यहाँ पर बाजी है ।

प्रति-दिशा फैलकर मुगल-सैन्य ग्रामों को करती भस्मसात,
साहसी मराठा-वीर डटे, हारते, जीतते, भिड़ हताश ।
दल-बल सब यौद्धिक अस्त्र-शस्त्र, मुगली साधन भरपूर रहे,
इसलिए मराठे महावीर, पीछे हटने को विवश हुए ।

तब भी साहस के साथ शूर, फिर-फिर कर छापा मार रहे,
पग-पग पर मुगलों के शिर पर, करते असि विकट प्रहार रहे ।
शिव ने देखा विपरीत समय, इसलिए पुरंदर-संधि किया,
निज शक्ति-सैन्य को व्यर्थ न कर, जयसिंह की शर्तें मान लिया ।

उपरांत वर्ष भर वीर-शिवा, मिर्जा जयसिंह के साथ रहे,
ले वीर मराठी-सेनाएं, बीजापुर पर आक्रमण किए,
मुगली सैनिक अभियानों का, उनके नायक, रण-कौशल का,
व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किया, उस कूटनीति साधन-बल का ।

आगामी वर्ष, शिवा, निर्देशित हो जय सिंह आश्वासन से
आगरे गये सह-सैन्यवीर, सम्मान-प्राप्ति हित औरँग से ।
अब तक छत्ता भी डेढ़ वर्ष, मुगली सेना में साथ रहे,
बीजापुर पर आक्रमण-समय, रजपूती नायक बने रहे,

मुगली सेना-रण-कौशल का, संपूर्ण ज्ञान कर प्राप्त लिया ।
हिन्दू भारत के प्रति उनकी, सब रीति-नीति को भाँप लिया ।
थे खेल-चुके वे भी अब तक, मुगली सेना के खेल सभी ।
रहकर शिव के अति समीप, मिल सके न पर, मन खोल कभी ।

संभव ही कब थी वहाँ कहीं, पारस्परिक वार्ता अंतरंग,
इसलिए दूर थे, मन में ही ले, छिपे भाव निज निस्तरंग।
सेनापति वली बहादुर खाँ, जो था दिलेर खाँ कहलाता।
उसकी सेना में बने रहे, करते छत्ता रण का हाँका,
इसलिए ठहरना पड़ा अभी, जब शिवावीर आगरे गए,
मिलनातुर उत्कंठा उमड़ी, जब लौट रायगढ़, पहुँच गये।
सुन लिया, आगरे मध्य किया था शिवा वीर ने जो कमाल,
निकले ज्यों अरि की दाढ़, तोड़, गौरव से उन्नत किए भाल।
अतएव, एक दिन, अवसर से, आज्ञा दिलेर से ले सुधीर,
आखेट-हेतु निकले, सँग में पत्नी, अंगद, कुछ सैन्य वीर,
जिस प्रबल कामना को लेकर, छत्ता ने गृह से पग ढाला,
युग वीरों की सहयोगमयी, आने वाली थी शुभ बेला।
सह संगिनि, संगी वीर-व्रती, बाँका आखेटक घुड़सवार
चर्चा न किसी से किया, कहाँ किस ओर जा रहे, कुछ विचार।
अद्भुत आखेटक मौन-व्रती था कार्य और उद्देश्य और,
सीमाओं तक शिवराजा की, मुगली सैनिक चौकियां जोर।
यदि ज्ञात उन्हें हो जाता, जो उद्देश्य, भला वे जा पाते ?
राजसी वस्त्र से हीन, मात्र वे साधारण आखेटक लगते।
जिसने भी कुछ जिज्ञासा की, कौशल से वार्ता टाल गये।
किस ओर मिलेगा क्या शिकार, सीमा तक यों कर पार गये,
अट्ठारह वर्षी युवक बढ़ा, किस लक्ष्य हेतु, किस ओर कहाँ ?
बीहड़ वन-पथ, पर्वत नद-नदि, पथ-गृह-ग्रामों के पार कहाँ ?
सरपट बढ़ता दक्षिण-पथ पर, दिन भर यात्रा, निशि ग्राम वास,
कितनी ही रातें कटीं, कहीं गिरि-गह्वर में आरण्य-वास।
अति दुर्गम वह पर्वत प्रदेश, थे नहीं राजपथ, मार्ग सुगम,
आरण्य सघन, द्रुम-लता-गुल्म, तृण-कंटक, हिंसक पशु निर्मम।
आतिथ्य तोष कर ग्रहण किया, रूखा-सूखा जो मिला प्राश,
साधना-सिद्धि-पथ ऐसा ही, त्यागी जन सहते कष्ट त्रास।
पर मौन मार्गचारी चर्चा से, चकित सभी यह युवक कौन ?
दुर्गम वन पथ पर तेजस्वी ज्यों निभृत राम चल रहे मौन।
लौटे न कई दिन, मुगल-सैन्य में, चिन्तित अधिक दिलेर हुआ,
पर समझ गया आखेटक वह, अपने पथ पर चल दूर गया।
लौटेगा शायद कभी नहीं, पर कहाँ गया, किस ओर गया ?
अज्ञात, न कुछ अनुमान हुआ, मनमार अस्तु वह बैठ गया।
(अर्द्धनिशा - २४-२-६४-गुरुवार)



८. छत्रपति शिवाजी से भेंट

२५-२-६४ शुक्रवार

रवि अस्ताचल विश्राम-पथी, अंबर में संध्या की लाली,
रतनार हुआ जल-थल-सारा, खिलने के ज्यों निशि-दीपाली,
था धाम-पथी श्रम-धर्म-कर्म, गोधन गोठों को लौट चले,
अशनार्थी सब परिवार जुड़े, ग्रामों-धामों के दीप जले ।

वन का कलरव बढ़ शाँत हुआ, हूँके लँगूर- हू-हा श्रृगाल,
जब सिंहनाद कर गरज उठी, जैसे अरण्य-घाटी विशाल ।
आतंक-व्याप्त चिंतित जन-मन, पूना परिसर में मुगल सैन्य,
आक्रमण करे कब? क्या जाने? गुप्तचर सजग, सन्नद्ध-सैन्य,

सीमावर्ती शिवग्राम प्रथम, कोई अश्वारोही अभीष्ट,
सह संगीयुत, निशि-शरणार्थी ज्यों हुआ ग्राम-थल में प्रविष्ट ।
सूचना मिली आया पटेल, मिलकर उससे फिर बात किया ।
पर नाम-धाम-उद्देश्य आदि, उसने न तनिक संकेत दिया,

बतलाया दक्षिण-पथी-मात्र, विश्रामार्थी जो निशायाम,
प्रातः होते ही कर देगा, आगे अपने पथ पर प्रयाण,
तब भी पटेल आतिथ्य-व्रती, छत्ता को घर पर ठहराया,
सकुटुम्ब वहीं सँग बैठ स्वयं, निशि-भोजन उनको करवाया ।

भोजन सन्मुख था, पर पटेल ने, आत्मीय चर्चा चाली-
अपना कर्त्तव्य-निभाता-सा जिज्ञासा की आशा डाली ।
"हैं आप कौन? अज्ञात मुझे, पर निश्चित तुम क्षत्रिय कुमार,
अपने घर में स्वादिष्ट अमित, व्यंजन खाये होंगे सँभार ।

पथरीला पर अपना प्रदेश, हम तो रूखा-सूखा खाते,
रुचिकर क्या होगा अन्न तुम्हें? आतिथ्य करें क्या? सकुचाते ।"
छत्ता बोले- "दादा ! सनेह से सना हुआ सुंदर भोजन,
स्वादिष्ट अमित, पा रहा आज, यह अमित परिश्रम का अर्जन ।

सौभाग्य हमारा आप स्वयं, सहृदय गुरुजन हों, ज्यों परिजन ।
था कौन पुण्य-फल? मिले आज ऐसे सज्जन गृह-जन-दर्शन ।"
प्रातः पटेल को धन्यवाद देकर छत्ता निज मार्ग लगे,
देखा सब स्त्री-पुरुष जुड़े, जो गाँव मिला पथ में, आगे,

अति कोलाहल था व्याप्त, सुना हृद्-द्रावक रोदन भी भारी,
दुर्घटना, या यों सता रहा, इनको कोई अत्याचारी ?
पहुँचे थल पर जिज्ञासावश, तेजी से अपना अश्व बढ़ा,
देखा तो पड़ बावड़ी मध्य, बालक था कोई डूब रहा,

रोते-चिल्लाते मातृ-पितृ, लाड़ला सामने आँखों के
था डूब रहा, निरुपाय सभी, पुरजन-परिजन उच्छ्वासों से ।
घोड़े से छत्ता कूद पड़े, सह वसन बावड़ी कूद गये,
छप से जल में जा धँसे, उठे बालक को अपनी बाँह लिए ।
सौंपा माता को, धन्यवाद देते जन सारे अति कृतज्ञ,
'कर्तव्य मात्र' कह चले, देखते रहे सभी जन बने अज्ञ ।
रक्षाहित औरों की, निर्भय जो जीवन-भेंट चढ़ाते हैं,
निस्वार्थ वहीं परस्वार्थ-व्रती, भगवान स्वयं बन जाते हैं ।
दो चार दिनों में भीमा-तट थे खड़े वीरवर छत्रसाल,
सन्मुख सुतीक्ष्ण धारा गँभीर, बहती कल-कल-कल भर उछाल ।
था प्रश्न कि कैसे पार करें, धारा गँभीर अति तीक्ष्ण ढाल,
समुचित साधन, नाविक कोई था नहीं कि जो देता निकाल,
ठहरना पड़ा, कुछ सोच-समझ, फिर काष्ठ-नाव निर्माण किया ।
कौतुक था, सबने साहस के कौशल से सरिता पार किया ।
यह मध्यभाग शिवराज्य, दुर्ग में शिवा-शिविर भी था समीप,
शिव चकित दुर्ग से देख रहे, तिरते ज्यों दुर्गम सरि पुनीत ।
हल-चल थी बड़ी मराठों में, सेना सतर्क सर्वत्र जमी,
हाथों में नंगी तलवारें, भाले, अश्वों की बाग थमी ।
शिव ने सैनिक दल को अपने, कर दिया परे, सकेतों से
था ज्ञात आ रहे छत्रसाल, कढ़ मुगली शत्रु-निकेतों से
देखा था मुगली सेना में, परिचित थे शौर्य-पराक्रम से
वे स्वयं चाहते थे मिलना, उस वीर युवक बुंदेला से,
नर वीरों, उनकी निष्ठा की, शिव की पहचान अनोखी थी,
गुण-धर्म-युक्ति-कौशल, क्षमता, सब रहती जैसे परखी थी ।
करके प्रयत्न वे किसी भाँति-जब शिवा-शिविर द्वारे पहुँचे,
बतलाया द्वारपाल-दल को, 'मिलने आया शिव राजा से ।'
साश्चर्य विलोका सबने ज्यों, निज भेदपूर्ण वह दृष्टि भिड़ा,
सूचना दिया फिर राजा को, मिलनातुर द्वारे युवक खड़ा,
निर्देश हुआ, आतिथ्य-धाम में, आज सुखद-विश्राम करो,
मार्गारोहण से थकित, शयन-भोजन पा, श्रम परिहरण करो,
कल प्रातः होगी भेंट, यही राजे ने है आदेश दिया,
था छत्रसाल-मन अति प्रसन्न, प्रभु ने अभिलाषा पूर्ण क्रिया ।
हँसता प्राची का द्वार खुला, वह अरुण उषस् आभा-प्रसार,
गर्भित-शैशव-स्वतेज से ही, हर लिया अवनि का अंधकार ।
स्वागत कलियों ने किया बिहँस, बहचली गंधबह मंद-मंद ।
मधु कलरव का संगीत, विश्व, वन, अंबर में गाते विहंग ।

उग क्षितिज मध्य, उठ धीरे से, वह सवित बिम्ब शुचि, रश्मि लाल,
अनुराग पूर्ण अरुणिम गुलाल, अग-जग अंबर दिशि अंतराल ।
करते स्वतेज को प्रखर उठे, अंबर भगवान अंशुमाली,
बज रहीं हर्ष-आमोदमयी, तरु-तरु पल्लव-दल-करताली ।
इस पुण्य प्रात का संदेशा, हँस-हँस युग-युग दोहरायेंगे ।
इस धर्म-धरा के युगल वीर, आत्मीय स्वजन बन जायेंगे ।
ओ जगो धरा के पुण्य, हिन्दु-मन भरत-राम मिल जायेंगे,
वे पुण्य-पयस्विनि भीमा तट, भारत-संगम बन जायेंगे ।
इस पुण्य-धरा-मर्यादा का, क्षण आज नया वह आयेगा,
स्वातंत्र्य-व्रती रण-धीरों का इतिहास नया बन जाएगा ।
हो स्नान-निरत, जलपान किया, जब स्वस्थ हुए वर छत्रसाल,
सेवक ने सूचित किया- 'प्रतीक्षा में राजे, शुभ मिलन-काल',
हो अति प्रसन्न, उठ चले साथ सेवक के, मिलन-प्रसंग लिए,
आतिथ्य, समादर, प्रेम-सुमन, श्रद्धा के शुचि सद्‌भाव हिए ।
शीघ्र ही शिवा के कक्ष मध्य, छत्ता ने पहुँच प्रणाम किया,
रक्षक सशस्त्र दो, मंत्रि-प्रवर, चौकी साधारण, उठे शिवा
आओ प्रवीर प्रिय छत्रसाल ! क्यों कैसे इतना कष्ट किया !
बाहों में लेकर छत्ता को, शिव ने छाती से लगा लिया,
बिठला समीप निज आसन पर, पूछा सब मंगल समाचार,
अति स्नेहपूर्ण वाणी ललाम, छत्तागद्‌गद् शिव को निहार ।
श्रीमुख पर आभा ओजपूर्ण, नयनों में प्रतिभा का प्रकाश,
ऊर्ज्वस्वित वक्षस्थल, भुजबल, वीरत्व कर रहा स्वयं रास ।
बोले- 'दर्शन कर महाराज के, हिन्दु-वीरवर मानी के,
सब श्रांति-क्लांति मिट गई, भेंटकर राष्ट्रधर्म अभिमानी से ।
सुन चकित रहा निज बाल्य-काल्य से, शौर्य पराक्रम श्रीमन के ।
वांछित अभिलाषा पूर्ण हुई, खोलूँगा भाव सभी मन के ।
पथ में न किसी को नाम दिया, दर्शन न आपके किया कभी,
था द्वारपाल अनभिज्ञ रहा, फिर जाना कैसे नाम अभी ?
शिव बोले- 'ओ साहसीवीर! सहृदय, परस्वार्थी ओ उदार,
क्या शिशु का बचना संभव था, यदि तुम न कूदते जल मँझार ।
देते हैं तुमको धन्यवाद, वे अति कृतज्ञ ग्रामीण सभी,
छत्ता थे चकित- "महाराजा ! क्या जादू से है ज्ञात सभी ?"
जादू तो कुछ जानता नहीं, पर राज्य-व्यवस्था ही कुमार ।
प्रत्येक दिशा से आ जाते, प्रतिदिन जितने भी समाचार,
प्रत्येक गाँव का एक व्यक्ति, लेकर स्वग्राम के समाचार,
पहुँचाता अगले ग्राम-मध्य, अगला देता आगे विचार ।

इस क्रम से सब संदेश शीघ्र, प्रतिदिन आ जाते पास यहाँ,
थी प्रथम सूचना, निशामध्य, ठहरे पटेल के धाम जहाँ ?
सँग में सप्रेम भोजन पाया, निज नाम-धाम पर दिया नहीं,
सूचना अस्तु थी मुझे, आ रहा युवक राजगढ़-ओर कहीं ।
उससे भी पूर्व, चले जिस दिन तुम थे, दिलेर का शिविर छोड़,
लौटे फ़िर नहीं, तभी मुझको, अनुमान हुआ छत्ता-किशोर ।
हैं ज्ञात तुम्हारी यात्रा के, मुझको जितने भी समाचार,
जिस भाँति जहाँ तुम इधर बढ़े, करते जो खेड़े, ग्राम पार ।
प्रति ग्राम-ग्राम में इसी भाँति, मेरे जितने निर्देश सभी,
पहुँचा करते, पालन करते, तन-मन-धन से ग्रामीण सभी ।
इस ऐक्य-सूत्र में बाँधा है, जिसने जनता को दे प्रकाश,
कर भ्रमण ग्राम खेड़ा-खेड़ी, वे हैं समर्थ गुरु रामदास ।
प्रति ग्राम खेड़ के मंदिर में जन होते हैं एकत्र सभी,
हरि-कीर्तन करते, राजाज्ञा से अवगत करते कार्य सभी ।
उस धर्म-ज्ञान की चर्चा में, सुख-दुख की चर्चायें होतीं,
सहभागी होते सब पुरजन, अनुशासन की होती गोष्ठी ।
पथरीला महाराष्ट्र मेरा, जन-निर्धन, कृषि-पशु पर जीते,
मुगलों जैसी अति वृहद सैन्य, तोपें कैसे हम रख सकते?
अतएव यहाँ ग्रामीण, नगरवासी भी वे जितने सारे,
अनुशासन-बद्ध-प्रवीर कृषक, सैनिक स्वराष्ट्र के रखवारे ।
सेना यद्यपि छोटी, तथापि जन-बल है मेरा अति महान्,
प्रतिबोध प्रबल दे मुगलों को, उनकी असफलता का प्रमाण ।
करते हम छापामार युद्ध, निश्शंक, वेग से, कौशल से,
करते विनष्ट अरि, छीन वहीं सैनिक-सामग्री निज बल से,
अब आये क्या उद्देश्य लिए, इच्छा मेरी अब उसे सुनूँ,
क्या चाह रहे? बतलाओ तो, सेवा सहायता कौन गुनूँ?
''स्वर्गीय पिता ने मुझे दिया आदेश, करूँ मैं शिव-दर्शन ।
निज धर्म, देश की सेवाहित, लूँ सही मार्ग का निर्देशन ।
बस इसी प्रयोजन से, जयसिंह की सेना में दक्षिण आया ।
थे आप आगरे गये, अस्तु दर्शन का अवसर अब आया ।''
''सुन चुका आपको और आपके पिता विक्रमी को सुधीर,
वे मेरे आदरणीय बहुत, साहसी सुकृतमय, धर्मवीर ।
हिन्दुत्व सुरक्षा और मुक्ति-हित, जीवन भर संघर्ष किया,
किस भाँति नीच दुष्टों मुगलों ने, उनका निर्मम अंत किया ।
बुंदेल खंड-हिन्दू-शासक, यदि होते उनके साथ सभी,
इतिहास अन्य होता, खिलते भारत-भू के सौभाग्य कभी ।''

"अब छत्रसाल के मस्तकपर, चिन्ता-रेखाएँ ज्यों उभरीं,
स्मृति में जैसे जाग उठीं, कुछ विगत विचारों की सरणी-"
"जीवन के अंतिम चरणों में चिंतित रहते थे पिता धीर,
वे देख रहे थे हिन्दु-धर्म, व धरती का संकट गँभीर ।
रहते व्याकुल अतएव सदा, निज धर्म-देश के त्राण हेतु,
जूझते रहे साधन-विहीन भी, तत्पर अरि के नाश हेतु ।
संकट-विशेष अब जो आगे, करना मुझको भी कुछ आगे,?
इसलिए मार्ग निर्देश हेतु हूँ खड़ा यहाँ श्रीमन् आगे ।
पहले से भी गंभीर अधिक सन्मुख संकट वह, छत्रसाल,
अस्तित्व-सुरक्षा का समक्ष है प्रश्न कठिन कितना कराल ?
आशंका, बच पायेगा क्या वह हिन्दु-धर्म-संस्कृति-विशाल ?
संगठित नहीं वह हिन्दूबल, इसलिए रही चिन्ता कराल ।
दुख है समाज के व्यक्ति बड़े, जितने भी वे योद्धा-समर्थ,
वे शत्रु-मित्र पहचान नहीं, करते, इससे भारी अनर्थ ।
चाँदी के टुकड़ों-हेतु तनिक, यवनों का होकर क्रीतदास ।
यवनों की सेवा-रत करते, अपने हाथों अपना विनाश ।
निज धर्म-कर्म की, संस्कृति की जड़ खोद रहे करके प्रयास,
काटते गला हिन्दूजन का, अपने ही हाथों अनायास ।
आश्चर्य हिन्दु-नाशक मुगली सेना के सेनापति हिन्दू ।
करते विनष्ट निज देश-धर्म, काटते शीश अपने हिन्दू,
उनमें न शेष साहस चिन्तन, उनको न राष्ट्र का तनिक ध्यान,
कर सकें जो कि हिन्दू-बल से, अपने स्वराज्य का नव-विधान ।
राणा प्रताप के समय मूर्खता, मानसिंह ने किया यही,
दुहराया है जा रहा आज भी, बंधु दुखद इतिहास वही ।"
"पर महाराज ! इस स्थिति से, उठने का होगा क्या उपाय ?
क्या करना होगा ? बतलायें? हम जोड़ सकें हिन्दू निकाय ?"
अब शिवा- शब्द गंभीर हुए- "मिलकर सुकार्य करना होगा,
पावन-भू से विधर्मियों की, सत्ता विनष्ट करना होगा ।
जागृत कर पावन देश-प्रेम, अपना हिन्दूबल गठन करो ।
अनवरत छेड़ संघर्ष प्रबल, अत्याचारी का दमन करो ।
निज देश प्रेम का सुप्तभाव, अब भी जो हिन्दू-प्राणों में ।
जागृत कर ऐक्य विधान करो, दो ध्यान सजग अभियानों में
जब देखेंगे सब देश बन्धु, साहसी देश-नेतृत्व खड़ा,
तब अनायास जुड़ आयेंगे, ध्वज के नीचे, ले खंग कड़ा ।
ज्यों-ज्यों होंगे हम सफल, जुड़ेंगे अनुयायी उतने प्रवीर,
निज देश-जाति की रक्षा-हित, निज आन-बान के धनी धीर ।

हिन्दू-जन में हैं प्रबल शक्ति, पर बिखरी है, उस हेतु निबल,
सब देख रहे हो मौन खड़े, अतिचार हो रहे जो अविकल ।
वे देख सहमते यवनों की, सेना तोपें सब साधन-बल,
लड़ उनसे विजयी होने की, आशा न उन्हें, चुप हैं हतबल ।
विश्वास उन्हें हो जाय कहीं- "हैं म्लेक्ष नहीं उतने अजेय ।
लड़ सकते अल्प साधनों से, उनसे यदि उर में प्रबल ध्येय ।
विश्वास यही यदि जाग उठे, भारत-वीरों के अंतर में,
फिर हो जायेगा कार्य-सरल, ये यवन नष्ट होंगे पल में ।"
"यह ठीक, किन्तु इन यवनों के प्रति क्या होगी व्यवहार नीति ?
जिससे उनके सम्मुख अपनी, हम खड़ी कर सकें शक्ति भीति ।"
शिव बोले- 'हिन्दू-धर्म, देश की रक्षा अपना इष्ट ध्येय,
इस लक्ष्य-सिद्ध के हेतु करें, संभव जितना, वह सब विधेय ।
उसमें न भ्रांति या पाप कहीं, सब उचित और धर्मानुकूल,
उन धूर्त कुटिल, कपटी यवनों से उचित वही व्यवहार मूल ।
यह नीति 'छली-कपटी-जन से, छल-कपट नहीं जो अपनाते ।
निश्चित समझो वे मूर्ख, शत्रु से शीघ्र पराजित हो जाते ।'
इसलिए धर्म की रक्षा हित, यवनों से कर संभव छल-बल ।
करना होगा सब भाँति नष्ट यवनों की सत्ता, सब दल-बल ।
हम ध्येय-पथी दोनों समान, इसलिए ध्येय की सिद्धि ज्ञान ।
अपने मन में रक्खों सदैव, अपनी रक्षा का बहुत ध्यान ।
था चाह रहा मन में अपने, अफजल खाँ करना मुझसे छल ।
यदि होता तनिक असावधान, होता मेरा जीवन निष्फल ।
था दिया वचन औरंग ने भी, मेरे जीवन की रक्षा का,
लेता न सहारा यथा-तथा का, तो क्या लौट यहाँ आता ?
है शत्रु सदा ही शत्रु, सुनिश्चित यह अपने मन में जानों ।
उससे न भूल कर कहीं, मित्रता-भाव कभी मन में ठानों ।
साथ ही यहाँ है एक और भी बात, बंधु! ध्यातव्य सही,
अपनी रक्षा का ध्यान रखो, वह युद्ध-मात्र ही ध्येय नहीं ।
'उद्देश्य करें हम विजय-वरण'- कर नाश नीच अत्याचारी,
इन दुष्ट विधर्मी यवनों का, उनका जितना दल-बल भारी ।
यदि यवन-युद्ध में कभी कदाचित अनुभव हो स्वपक्ष निर्बल,
आशंकापूर्ण पराजय की, तो रक्षित हट जाना कौशल ।
कुछ प्रशंसनीय मानते वीरगति पाना, हटना किन्तु नहीं,
होती है इससे लक्ष्य हानि, रक्षित होता है धर्म नहीं ।
इस भाँति धर्म-रक्षक न रहें, तो धर्म सुरक्षा कौन करें ?
इसलिए पराजय के क्षण में, हम स्वयं सुरक्षा हेतु फिरें ।

घिरना न शत्रु के घेरे में, अतएव सदैव सतर्क रहें ।
हो सावधान, घेरे में पा, अरि पर भीषण आक्रमण करें ।
है उचित शत्रु से युद्ध, चोटें दे सकें उसे जब हम भारी,
अन्यथा शक्तिनिज व्यर्थ न कर, अवसर की खोजें तैयारी।

यदि शत्रु सबल, तो संधि करें, करते विग्रह की तैयारी,
अवसर पा, प्रबल प्रहार करें, रणनीति यही समझो न्यारी ।
डरपोक और कायर हमको, जन जो कुछ चाहें कहा करें,
अविवेकी तुच्छ नीचजन की, बातों की चिन्ता नहीं करें ।

कपटी अरि से कर-संधि, यथावश्यक उसको भंग करें ।
निज धर्म, देश-हित कर उपाय अरि को सब भाँति परास्त करें ।
उत्साहित थे अति छत्रसाल-नय ज्ञान नया दे महाराज !
दे अद्‌भुत वह रण-नीति कुशल, मुझको कृतार्थ कर दिया आज।

यह सच, इन नीच विधर्मी जन से पीड़ित अपना धर्म देश,
सह रहा प्रताड़ित हिन्दू-जन, निरुपाय दुखी जो अमित क्लेश ।
था चला आपकी सेवा में, इसलिए लिए मन में विचार,
कर सकूँ राष्ट्र की सेवा में, मार्जित अपनी असि तीक्ष्ण-धार ।

दुख से कहता, पर मुगलों की सेवा, सेना में साथ-साथ,
स्वजनों के धड़ से पृथक् शीश, करता आया, कर भू विनाश ।
पर होगा वह अब कभी नहीं, इसलिए आपकी सेवा में,
यवनों का करता रहूँ नाश, अर्पित स्वराष्ट्र की सेवा में ।"

कंधे पर रखते वरद हस्त, बोले शिव- 'हे नर छत्रसाल ।
तुम क्षत्रिय कुल-भूषण, प्रवीर ! चंपत-सुपुत्र, बुंदेल-बाल !
इतने बलिष्ट तन में, पवित्र हिन्दू-सुरक्त, मन आन-बान,
कर सकते क्या तुम नहीं? आ गये यहाँ, किन्तु तुम हो महान ।

मैं स्वयं चाहता था मिलना, तुमसे मन में था ही विचार,
पर इच्छा मातृ-भवानी की, आ गये स्वयं तुम इसी द्वार ।
अच्छा ही हुआ, यहाँ मिल कर करसके हृदय-विनिमय-विचार
अति सुखद ध्येय-पथ लिए एक, हम हरें मातृ-भू-दुख अपार ।"

हैं नहीं पराये हम दोनों, तुमसे हम कुछ भी भिन्न नहीं,
हम सदा सहायक ही होंगे, हो पायेगा जब जहाँ-कहीं ।
कटिबद्ध हुए संकल्प लिए, भुजबल से मुगल विनाश हेतु
उत्तम है, मातृ-भवानी की, शुचि-कृपा बनाये सफल सेतु,

तुम सिंह-सदृश करके दहाड़, अरि-हस्ति-शीश पर कर प्रहार,
मुगलों, मुगली सेनाओं को, मारो गंडस्थल फाड़-फाड़ ।
अत्याचारों के नाश हेतु तुमसे संकल्पी नेता की,
आवश्यकता आज इस धरती को तुमसे रण-रंग-प्रणेता की ।

निर्भयता से तुम बढ़ो वीर ! मारो यवनों को घेर-घेर।
विश्वास न करना दुष्टों का, कर्त्तव्य-हेतु मत करो देर।
भेजा उन कपटी दुष्टों ने, सरदार सहायक कई बार,
जो रहे साथ विश्वासी बन, पर अवसर पा कर दें प्रहार।
पर था सतर्क मैं अंतर से, गति-विधियों पर थी दृष्टि जमी,
कर दिया योजना ध्वस्त सभी अपनी सुतीक्ष्ण असि फेर वहीं।
निज मातृभवानी के बल से, मुगलों से डरता नहीं कभी,
माता करती मेरी सहाय, जब आता संकट घोर कभी,
मत करो पराश्रय का विचार, तुम से भारत को बड़ी आश,
स्वपराक्रम पर विश्वास करो, वर विजय वरो कर शत्रु-नाश।
तुम जीतो अपनी धरा, मुक्त निर्माण करो अपना स्वराज्य।
व्रत अटल तुम्हारा रक्खूँगा, तुम सजो मुक्ति-रण हेतु साज।
जीतो, भोगो-भू-राज्य अमित, यदि मृत्यु, मिलेगा स्वर्गधाम।
इसलिए उठो, संग्राम करो, ओ वीर ! न पलभर लो विराम।
बुंदेलखंड भी महाराष्ट्र-भू-सा ही है गिरि-वन प्रदेश,
छापामारी रणनीति वहाँ भी उपयोगी होगी विशेष।
भारी सेना बल मुगलों का, सन्मुख भिड़ना है उचित कहाँ ?
छिप करो अचानक शत्रुनाश, हो उचित जो कि जिस समय जहाँ ?
स्वागत होगा जब आओगे, मेरा घर सदा तुम्हारा ही,
पर देश-धर्म की जो पुकार, संप्रति तो हमें बिछुड़ना ही,
कर रहा प्रतीक्षा नेता की वह वहाँ वीर बुंदेल खंड,
निज पुण्य कार्य का अनुष्ठान, जा करो, हिन्दु-जागरण बंधु !
है असामान्य हिन्दू-जन-बल, जग-विजयी वह वीरत्व पूर्ण,
बौद्धिक बल, भुजबल, नैतिक बल, संयम अजेय शूरतापूर्ण।
करता उनकी सत्ता विनष्ट तब तक प्रवीर ! विश्वास करो,
दूँगा सहाय मैं अस्तु वहाँ, सूचना जभी तुम मुझे करो।
"वह वर्णनीय कब महाराज ! जो किया दर्श-आनंद वरण,
उपदेशामृत कर्त्तव्य हेतु, छू लूँ वे पावन प्रीति-चरण।"
झुकते ही कर से उठा लिया, निज वक्ष लगा कर छत्ता को
"हे पराक्रमी हे वीर बंधु ! छू चरण नमन कर माता को
तुम धर्म-देश की रक्षा हित, संकल्प सुदृढ़ निज हृदय धरो।
यह पावन धरती भारत की, उठ प्रातः पावन चरण छुओ।
उसकी रक्षाहित धर्म-वीर ! दृढ़ता से कर में अस्त्र गहो,
उसकी सेवा में कर्मवीर ! तन-मन-धन सब बलिदान करो।"
थे व्यक्ति पारखी शिवावीर, पहचान लिया था छत्ता को,
जो उनके भीतर छिपी हुई, जाज्वल्यमान उस प्रतिभा को

वे नहीं चाहते थे निबद्ध व्यक्तित्व बने, इतना महान ।
हो मात्र मराठा सैन्य संग, मुगलों से करते घमासान ।
केवल दक्षिण के मुगल रोध से मुगलोच्छेदन संभाव्य नहीं,
उत्तर में भी विद्रोह-प्रखर हो राष्ट्रमुक्ति तब साध्य सही ।

नेतृत्व शक्ति जिसमें विशाल, हो अनुयायी क्यों रहे कहो ?
जिसमें भुजबल, हो स्वाभिमान क्यों आँच शत्रु की सहे कहो ?
थी चिनगारी जो दहक रही, उन छत्रसाल के अंतर में,
शिव ने ज्वाला का रुप दिया, भभकाया गौरव के स्वर में

जिस भाँति हिन्दु-संगठन-कार्य, शिव ने अपना था छेड़ दिया,
तद्वत हिन्दू-संगठन-कार्य-हित छत्ता को उपदेश दिया,
स्थल-स्थल पर धर्म-युद्ध, हो भारत भर में जन-विरोध,
मिट जाएगा मुगली शासन, शिवकूटनीति का रहा बोध ।

शिव बोले- 'यौद्धिक वृत्ति एक, क्षत्रिय का गुण अनिवार्य रहा,
भुजबल, असिबल ही तो उसकी सत्ता का शुचि आधार रहा
तुम होनहार, साहसी वीर, स्पष्ट तुम्हारा वह भविष्य ।
नर नाहर मुक्ति-यज्ञ में तुम, कर यवनों का बध दो हविष्य ।

तुम धीर-वीर, ज्ञानी सुजान, हो बुद्धिमान उत्तम चरित्र,
यह हस्त-प्रसारण, पर-सेवा, कब उचित तुम्हें हे शक्ति-पुत्र ।
यदि हाथ पसारा ही तो लो तलवार-भवानी-मंत्र पूत ।
चरितार्थ करो निज ध्येय वीर ! हो भारत-भू के नर सपूत ।

यह भेंट तुम्हारे योग्य वीर- कह बाँध दिया कटि में कृपाण,
दे भाल तिलक, आशीष दिया, कंधे में देकर धनुष बाण ।
था दीप्तिमान मुख छत्ता का, शिवभरते नित उत्साह रहे,
दृढ़-संकल्पों में, महाव्रती का जीवन-पथ-निर्धार रहे ।

देखा उनका संगठन सुदृढ़, यौद्धिक शैली, रण-तैयारी ।
कौशल अश्वारोही दल का, अविराम छिड़ी छापामारी,
प्रतिग्राम-ग्राम के भिड़े शूर अपना अजेय विश्वास लिए ।
निज देश, धर्म की रक्षा में, अरि-तापी असि की आग लिए ।

सप्ताह कई बीते शिव के संग देश-धर्म की चर्चा में,
चल पड़ा पुनः आशीष लिए, बुंदेलखंड की अर्चा में ।
दृढ़-संकल्पों के सामने जलधि, हिमगिरि झुक पथ दे देता है ।
प्रभु का शिर पर वह वरदहस्त, प्रतिपग जयमाल पिरोता है ।

(सोमवार २८ फरवरी १९९४)



६ स्वातंत्र्यव्रती शक्तिपुत्र

उद्गीरित लघु क्षुर धारा ही, सलिला गंगा बन जाती है।
मिलकर यमुना जल-धारा से, संगम विशाल बन जाती है।
अपना उद्देश्य महान लिए, जो आगे चरण बढ़ाते हैं,
विजयी हो, गौरव शिखर बने, इतिहास अमर बन जाते हैं।

अभिनव प्रकाश के जो प्रभात, संकल्प-किरण विकसाते हैं।
तेजस्वी-जन निज आभा से, दिनमान स्वयं बन जाते हैं।
साहस की जगते किरण, शीघ्र संकट के घन-छँट जाते हैं।
पौरुष की उठते बाँह प्रबल, हिमवान स्वयं झुक जाते हैं।

शिव संदेशित उपदेशामृत, छत्ता जीवन अमरत्व बना।
करते विचार ज्यों बार-बार अधिकाधिक वे औचित्य मना।
थे लौट रहे जीवन पथ पर, दृढ़-संकल्पों का भार लिए।
निज देश-धर्म की चिन्ता में, रह-रह मन मौन विचार लिए।

थे देख रहे "हिन्दू-समाज जो, अस्त-व्यवस्त हो पड़ा आज,
हो स्वाभिमान से शून्य, हुए मुगलाधीन सभी राजाधिराज।
हो गये हीन बल, शेष नहीं उनमें स्व-शक्तिविश्वास रहा,
जन-दुख, मर्मांतक पीड़ा का, कुछ भी न उन्हें आभास रहा,

छन-छन नूपुर, खन-खन प्याली, झूठी दरबारी शान-बान।
पौरुष-हत हो बैठे सारे, हो करके मुगलों के गुलाम।
उनमें न परस्पर प्रेम रहा, निज राष्ट्र धर्म का नहीं ध्यान।
उनमें न आत्मबल तेज रहा, जो करें मुक्ति-रण का विधान।

उन राष्ट्र किशोरों की दीक्षा, मस्जिद में इस्लामी इमाम,
मकतब में शिक्षा इस्लामी, दे रहे मौलवी मुसलमान।
मंदिर प्रतिदिन ढह रहे, कट रहीं कितनी ही उनमें गायें,
कट रहे विरोधी शूरवीर, इस्लाम नहीं जो अपनायें,

देता वह मर्मांतक पीड़ा, अपमान आर्य-बालाओं का,
क्या कहें आह ! जो हरमों में चीत्कार भरा अबलाओं का।
वह धर्म अरे वह धर्म कौन, जिसमें ममता या नहीं प्यार।
करुणा निर्वासित हुई जहाँ, अवशिष्ट छोड़ क्रूरताचार।

जैसे भी दुर्गम स्थिति से, निजमुक्ति वरण करनी होगी।
उज्ज्वल अतीत आदर्शों की, झाँकी प्रस्तुत करनी होगी।
है मुगल शक्ति अत्यधिक, किन्तु उसकी भी है ही कुछ सीमा।
किसके बल पर वे शाह बने, किसके बल पर वह बल भीमा

किस भाँति उन्हें यह शक्ति मिली, करते क्यों सभी विचार नहीं ?
इतिहास भुलाये बैठे हम, क्या होगा ऐसा देश कहीं ?
नीचा करने को एक-दूसरे को, टकराये हम बार-बार,
इसलिए हुए निर्बल सारे, यों बीज फूट के बो अपार ।

फिर बुला विधर्मी, आक्रामक, कुछ भी नतनिक करते विचार,
निज रुष्ट सगे बाँधव जनके, हम बने पराभव-कर्णधार ।
समझे हम अपनी विजय, किन्तु वह धूर्त-विधर्मी बेइमान,
हम पर भी चढ़ बैठा, समझे जिसको निज सहयोगी अमान ।

दो के पारस्परिक द्वंद्व की ही, परिणाम दासता अपरिमाण,
हिन्दू समाज के पतन-हेतु, मूर्खता, द्वंद्व, ईर्ष्या समान ।
जर्जरित हुए पर तो भी क्या, हमने कुछ वैसा किया ध्यान ?
वह भूल सुधार कभी अपनी, संगठन हेतु कुछ किया काम ?

छत्रपति शिवा जी इकले ही, हैं छका रहे अरि मुगलों को,
संगठित बाहुबल छाया में, छाया देते जो अबलों को ।
हो विवश टेकते घुटने अरि, सन्मुख जाने में काँप रहे,
वे मुगल, विनाशी-काल-सदृश, वरवीर शिवा को भाँप रहे ।

गिरि-वन-प्रदेश, जर्जर-समाज, निर्धन कृषकों का देश जहाँ ।
निस्साधन-जन के जीवन में शिव ने पाई वह शक्ति कहाँ ?
फूँकी समाज में प्रेममयी वंशी नूतन चेतना जगी,
दे धर्म-देश का वह परिचय, सन्मुख जो संकट आग लगी ।

दे नीच विधर्मी शासन के, अत्याचारों का वह परिचय,
पार्वती मावलों और उपेक्षित, किया महारों का संचय ।
कुनबी मरहट्टा कृषक धीर, सब आये नग्न कृपाण लिए ।
निज देश-धर्म की देहली पर बलिदानों का अरमान लिए ।

रण-व्रती राष्ट्र की सेवा में, तिलभर न कहीं डिगने वाले
संग्राम क्षेत्र के महाविकट, मरकरही जो हटने वाले ।
सब में स्वदेश का प्यार जगा, सब में स्वधर्म-अभिमान जगा,
कर दिया खड़ी वह प्रबल सैन्य, संगठन शक्ति का मान जगा।

उसके ही प्रबल पराक्रम से, उनके रण-शौर्य-विधानों से
हो गये शत्रु के मान भंग, गिरि के जैसे तूफानों से,
यवनों का करते महानाश, छीनते जा रहे किला-किला,
हर लिया ताप जन-जीवन के, भू के, जो अब तक थी विकला ।

अपने समाज में उन्हीं उपेक्षित, जन-मन में स्वधर्म-ममता,
जगमगा रही शुभ ज्योति सदृश, निर्मल आस्था, निश्चल दृढ़ता,
वह तथाकथित संभ्रांतवर्ग, पूर्णतः भ्रांत जो अनूदार,
कह नीच, उपेक्षित करता जो, निज धर्म-बन्धु-जन निर्विकार ।

पशु छू, कर चर्वण हाड़-मांस, व्यभिचारों में जो सने हुए,
नीची करतूतें, ऊँचे बन, कटु छुआ-छूत भी रचे हुए,
जो ढके असत्य बड़प्पन से, कर नहीं सके जो सत् दर्शन,
जिसमें मानव का मान नहीं, देखते मात्र अपना दर्पण ।

क्या पारस? कर स्पर्श जिसे, लोहा हो जाये स्वर्ण नहीं ?
शबरी के जूठे बेरों में, क्या घुला जाति या वर्ण कहीं ?
गुण-कर्म-कला का क्षणिक तंत्र, कब जातिवाद का तंत्र बना?
वह अर्थ-तंत्र का मुक्त तंत्र, कब छुआछूत का तंत्र बना ?

जिसके अंतर में अहंकार की, गहन स्वार्थ की धूल जमीं,
सुनते, न देखते अंध-बधिर संकट की छाई घोर अनी,
जो अपने सुख संपत्ति हेतु, स्वजनों को मार उजाड़ रहे,
उनसे क्या आशा ? जो समाज-शोषण का कर व्यापार रहे।

उनको भी पथ पर लाना है, जागृत कर उनका सुविवेक ।
त्यागी बन जो कर सकें राष्ट्र-तन-मन का जो अभिनवाभिषेक ।
वे ऊँच नीच के भेद-भाव, सबके मन से हरना होगा,
इस राष्ट्र-धर्म-वैतरणी में सबको समान करना होगा ?

बुंदेले जो संगठित कभी, देते स्वशौर्य का वह परिचय,
कर सके कभी दिल्लीपति के सेना-साधन का अद्भुत क्षय ।
जब-जब बुंदेली अवनी पर, मुगलों के क्षण भर पैर टिके,
'कक्का जू' की असिधारों से, अगले क्षण उनके पैर कटे,

संगठन वीर बुंदेलों का, कर कष्ट-सहन संभालते रहे,
ओरछा-नृपति-सिर, निज विक्रम का विजय श्रेय बाँधते रहे।
निज स्वार्थ-हेतु उनसे ही उन ओरछा-नृपति, धंधेरों ने,
छल किया बुझाया मुक्ति-दीप, बुंदेलों का अंधेरों में ।

आपसी बात वह किन्तु, सँभालेंगे परिवार बिरादर में,
उनको दंडित करवा लेंगे, अपने घर के न्यायालय में ।
लड़ने का लेकिन समय नहीं, आपस में ही यह हम सबका।
संगठित रहेंगे हिन्दू-जन, उद्धार तभी होगा सबका ।

जो किया, सो किया, सोच-समझ आगे सबको करना होगा,
संकल्प सुदृढ़ अति हुआ मुगल सत्ता विनष्ट करना होगा ।
यह विकट समय अस्तित्व हेतु, दृढ़-हिन्दु-संगठन खड़ा करें,
जो महाराज शिव की आशा, उसका ही शुभ आरम्भ करें,

निज कर्म-क्षेत्र विस्तार-हेतु छत्ता के मन योजना बनी,
कर भेंट वीर बुंदेलों से, प्रेरणा लक्ष्य की दूँ अपनी,
दृढ़ करें, संगठन शीघ्र, हृदय में उनके ऐसी लगन लगी,
प्रस्थित उत्तर को हुए, खोजते हुए मार्ग में सहयोगी ।

"था ध्यान उन्हें दतिया-नरेश, शुभकरण, वहीं जय सिंह-साथ,
थे लड़े पुरंदर-घेरे में, शिव के विरुद्ध रण-मुगल साथ ।
भेजा दिलेर ने दिल्ली को, सूचना गुप्त, पर अति असत्य ।"
"हिन्दू शुभकरण और जय सिंह, मन में शिव के हैं बने भक्त ।"
यह ज्ञात हुआ अब दोनों को, अतएव हार्दिक सहानुभूति,
हो गई शिवा के साथ, शुभकरण की छत्ता को थी प्रतीति ।
इसलिए शुभकरण से मिलने का, मन में प्रथम विचार किया,
यद्यपि था पिता विरोधी वह, विश्वासघात था प्रथम किया ।
चंपत के बल से ही 'पहले', थी मिली प्रतिष्ठा भी उसको,
चंपत-बध में परलिप्त, स्वार्थवश दी सहायता मुगलों को ।
छत्ता ने किन्तु न सोचा वह, चुप उससे मिलने प्रथम गये,
व्यवहार मिलेगा क्या कैसा? यह भाव न लाए रंच हिए,
सोचा, संभवतः मिलने से वह शत्रु, मित्र भी बन जाए?
संभव है उसके भी मन में, कुछ देश-प्रेम लौ जग जायें,
छत्ता को सन्मुख देख, शुभकरण पुलकित परम प्रसन्न हुआ,
चंपत से जो व्यवहार किया, संतापित उर में खिन्न हुआ,
छत्ता को बारम्बार गले से लगा, आज जीभर रोया,
अपने दृग-जल से बार-बार, अपना पापी अंतर धोया (१-३-६४)
पुत्रवत् वीरवर छत्ता को, देखता हर्ष की आँखों से,
भोजन सुख-सामग्री सारी, ला स्वयं जुटाया हाथों से ।
तब भी उदास मुख छत्रसाल, पूछा सप्रेम फिर एक दिवस,
बेटे ! मलीन क्यों, कौन कहो, चिन्ता तुमको कर रही विवश?
भैय्या चंपत यदि नहीं, शुभकरण चाचा तो संजीवित हैं ।
कारण बतलाओं जानूँ तो, मन जिससे इतना पीड़ित है ।
मैं दूर करूँगा उसे अभी, प्रार्थना पत्र दे दिल्ली को,
मनसब जागीर व्यवस्था भी करवा दूँगा मैं सब तुमको ।
पर सुखोपभोग की तृष्णा से, छत्ता आये थे पास नहीं,
भारत-माता को दुखी देख, मन भरता रहा उसाँस कहीं?
जो वीर पुत्र निज माता के, दुःख को कैसे कब सह सकते?
पीड़ित माता जब, तो सुपुत्र, पर्यंकों में क्या सो सकते?
"पितृव्य ! चाह वह नहीं, मुझे मनसब भी, थी जागीर मिली ।
मैंने ठुकराया सभी किन्तु, पीड़ा कुछ अन्य गँभीर मिली ।
स्वार्थी दुष्ट ये नीच मुगल, यों फँसा लोभ की घातों में,
उस राष्ट्र-धर्म, हिन्दू-विनाश का पाप हमारे हाथों में-
मढ़ रहे, अस्तु दिल्लीश्वर की सेवा में होगा लाभ नहीं,
इस राष्ट्र धर्म हिन्दू-जन का, होगा कुछ भी कल्याण नहीं ।

मैंने तो मन में ठान लिया, मर्दन कर मान दिलीपति का,
प्रतिशोध चुका लूँगा अब मैं, असिबल से शीघ्र आप सबका।''
बोला शुभकरण- 'नहीं बेटा! होगा विरोध यह उचित नहीं,
वह महाशक्तिशाली, बैठे विपत्ति लेना यह ठीक नहीं,
मत करो शाह-सेवा, जीते जी पास हमारे बने रहो,
सुख से 'खा-पी' जीवन भोगो, पर मुख से मत यह बात कहो ?
मेरी तो राय यही बेटा ! अपने जीवन में सुखी रहो ।
यदि नहीं मानते, तो जैसा हो उचित, समझ कर वही करो।''
माना न किन्तु वह छत्ता ने, मन में भी नहीं निराश हुए,
शुभकरण स्वयं भी हो निमग्न, मन में जैसे कुछ सोच रहे,
''तेजस्वी मुक्ति-दूत जैसा, पितृवत् वीर यह छत्रसाल,
मैं मुगल-दास, उत्सुक शायद हूँ पहनाने को दास्य माल।''
पर शीघ्र उसी क्षण छत्ता ने- 'यह कहते-कहते विदा लिया,
उद्दीप्त-शिखा से अंतर की, ज्यों उसका उर-स्पर्श किया ।
'पितृव्य ! समय जब आ जाए, तब नहीं भूलना यह इतना,
हो विंध्य देवि के वरद-पुत्र, सन्मुख हो राष्ट्र-धर्म अपना।''
परतंत्र भाव की धूल झाड़, शुभकरण-हृदय झकझोर गया,
दे भाव-विभोर विदा, संकल्प-विकल्पों में ज्यों डूब गया,
आंशिक ही सही, परन्तु मिला, साफल्य-सूत्र कुछ छत्ता को,
बुंदेलखंड की ओर जगाते, चले देश की ममता को (२-३-६४)
यद्यपि भविष्य-प्रति आशान्वित, छत्ता के डर की प्रखर ज्वाल ।
दृढ़ संकल्पी मन में न कहीं, आशंका का तिलभर उबाल ।
पर नहीं सैन्य या संगी थे, पग भर भी थी जागीर नहीं,
अतएव अनिश्चित था कि सहायक बुंदेले वे होगें ही ।
जिसके होती संपत्ति-शक्ति, सब झुकते आ उसके आगे,
यदि शक्तिहीन, संपत्तिहीन, बिन बोले जन जाते आगे ।
ओरछा-नृपति था वह 'सुजान', जो था चंपत का काल बना।
था व्यर्थ छत्र का अस्तु कभी, उससे कोई आशा करना ।
तब भी छत्ता वह भुला सभी, चलते आगे संकल्प मना,
प्रत्येक हिन्दु शासक प्रवीर से एक बार निश्चित मिलना ।
दे धर्म- देश का ज्ञान उसे, आश्वासित फिर इस भाँति करूँ ।
भारत-माता बुन्देल खंड की, सेवा में उसको खड़ा करूँ ?
सोचते, 'शीघ्र बुंदेल खंड में, पहुँच संगठित हिन्दु करूँ ?
तब तक पथ में जो इधर वीर, उनसे भी मिलता हुआ चलूँ।''
अतएव चचेरे बलदाऊ से मिलने औरंगाबाद चले,
बलदाऊ बलदीवान बन्धु, छत्ता से ज्यों बलराम मिले ।

बैठे हिल-मिल फिर एक साथ, एक ही थाल में भोजन कर,
बचपन का वह अतिस्नेहपूर्ण, ज्यों उमड़ उठा प्रेमिल अंतर ।
अब किया मनोगत व्यक्त, वीर छत्ता ने यो बलदाऊ से-
'जिसमें न आन, कुल मर्यादा, संबंध करे वह मुगलों से ।
जिसमें स्वदेश का, धर्मजाति का, हो कुछ भी अभिमान नहीं,
उसको ही हो सकता मुगलों की सेवा में सुखभान वहीं ।
अनुभव मैंने यह किया, मुगल सेना में रहते बार-बार ।
हम सभी नष्ट कर रहे स्वयं, निज देश, धर्म का सदाचार ।
है घुटन-साँस, सम्पूर्ण देश, परतंत्र सहन कर दुराचार ।
बेवश बालक नारी जन-जन, पग-पग पर कितने दुख अपार ।
धर्मांध दुष्ट वे मुगल असुर, कर इतने भीषण अनाचार,
भक्षण कर जाना चाह रहे, उस हिन्दु-राष्ट्र को मुख-प्रसार ।
हम भोग विजन-वनवास रहे, उन राम-लक्ष्मण के जैसा,
कर सकते क्या उच्छेद नहीं, इन क्लेशों का, रावण जैसा,
हम दोनों रामानुवर्तीबन, क्यों करें न कुछ भी तो वैसे ?
'कक्का जू' दद्दा जू ने मिल, मुगलों को मारा था जैसे?
हम तेज तुरंगों से कुचलें, अतिचार नीच-सत्ताओं का,
वह कार्य अधूरा पूर्ण करें, अपने उन वीर पिताओं का ।
गोमाता, माता-बहिन, तीर्थ पावन भू की प्रतिमाओं का,
जो नाश कर रहे, करें नाश हम भी उनकी सत्ताओं का ।
तिलमिला उठे बदलाऊ वीर, बोले "छत्ता ! स्थिति गँभीर,
मेरी आँखें दीं खोल, धन्य हो, धन्य-धन्य तुम बंधु वीर ।
कर रहा समर्पित निज सहाय, मुगलोच्छेदन को शीघ्र उठो ।
कंधे से कंधा भिड़ा रहूँगा आजीवन सँग मैं, वीर! उठो !
आशा-आकांक्षाओं, शत्रु-मित्र के भाव रहेंगे सब समान,
तन-मन से साथ तुम्हारे ही, छाया सा रहकर वर्तमान ।
प्रतिकार करूँगा मुगलों का, निज पितृदेव के ही समान ।
तुम उठो वीर! प्रणपूर्ण करो, प्रभु की इच्छा को कर प्रमाण ।"
प्रभु-विश्वासी अति 'बल-दिवान' छत्ता ने यों दो पत्र लिखे,
प्रभु-चरणों में रख दिए, उठाया बालक ने पावन-मन से,
आदेश- 'हिन्दु-संगठन करो, मुगलों का कर दो महानाश'
भावावेशी हो लिपट गये युग-बन्धु परस्पर सोल्लास ।
तुम हिन्दु-सूर्य हो छत्रसाल ! 'भा' से भूतल भर जाएगा ।
हम दोनों कार्यारम्भ करें, प्रभु हमको पथ दिखलाएगा ।
सहमति उनकी पा छत्रसाल, बुंदेलखंड की ओर चले,
घटना अनुकूल हुई ऐसी, बुंदेलखंड के मन बदले,

बुंदेल-संगठन-रत छत्ता, औरंगजेब को पता चला,
सहयोगी बल दीवान हुआ, सुन उसका जैसे मन बदला।
ग्वालियर क्षेत्र का सुबेदार जो, भेजा हुक्म फिदाई को-
"प्रस्थित हो लेकर फौज, ओरछा पर अति शीघ्र चढ़ाई को।
कर दो विनष्ट मंदिर बुत जो, ओरछा नगर विध्वस्त करो,
उस छत्रसाल-बलदाऊ का, बुदंल संगठन भंग करो।
तत्काल सभी हिन्दू-जन को, जबरन कर डालो मुसलमान,
इन्कार करें जो, कत्ल करो, जो भी बालक-बूढ़े, जवान।"
औरंगजेब के लिए नहीं, कोई नूतन यह बात रही,
हिन्दू-राजाओं के विरुद्ध, होता उसका फरमान यही।
उसका निमित्त तो यही रहा, इस्लामी सेवा का सुकर्म,
इस्लाम-प्रसार-मात्र ही था, उसके जीवन का सहज-धर्म,
निज अधीनस्थ हिन्दू-राजों से भी वह ऐसे कार्यों में
लेता सहाय, कब स्वाभिमान था शेष नरेश अनार्यों में।
तत्काल फिदाई खाँ ने भी ओरछा-नृपति को पत्र लिखा,
शाही फरमान-सूचना के सँग में अपना संदेश लिखा-
"हम आते सैन्य विशाल लिए, मंदिरों-बुतों-विध्वंस हेतु।
भोजन-आवास आदि व्यय का, रखना प्रबंध क्षति-पूर्ति हेतु।"
असमंजस में था अब सुजान, पालन करता फरमान कहीं
तो होगा भारी धर्म-द्रोह, यदि नहीं, रहेगा राज्य नहीं।
था एक ओर में कुआँ, दूसरे में थी अति गहरी खाई,
किंकर्त्तव्य-मूढ़, आश्रित-योद्धा, अतिविकट चुनौती थी आई।
दक्षिण में अभी सुजान सिंह, मुगली सेना के साथ रहा,
था इधर फिदाई खाँ, बुंदेलों में सन्नाटा व्याप्त रहा,
अट्ठारह सौ अश्वारोही सेना उसकी तैयार खड़ी,
ईश्वरेच्छा ही थी, अस्तु परिस्थिति छत्ता के अनुकूल पड़ी।
ओरछा वासियों ने भेजा स्थिति का सुजान को समाचार,
उत्तर न मिला, अतएव सभी ने अपने मन में कर विचार।
छत्ता के ही निर्देशन में, प्रतिकार 'फिदाई' का करके,
स्थिति सँभालने को तत्पर, सब हुए स्वयं अपने बल से।
थे किन्तु पाँच अश्वारोही, पैदल पचीस ही छत्ता के,
तब भी परिचय तो देना था, सब को निज शौर्य महत्ता के।
चाहते कहीं यदि छत्ता तो, ओरछा राज्य अपना लेते।
पर लोभ नहीं था कुछ वैसा, यह दोष भला क्यों सिर लेते?
चल रहा संगठन कार्य सुदृढ़, छत्ता का मोर पहाड़ों पर,
अनुदिन बढ़ रहे वीर सैनिक, मुगली संकट का अनुभव कर।

माता के आभूषणादि-विक्रय से, धन जोभी एकत्र किया,
छत्ता ने सैन्य-शक्ति-संग्रह में, सही-सही उपयोग किया ।
सहयोगी और विरोधी जो चंपत प्रवीर के कभी रहे,
सब छोड़ ओरछा शरण, स्वयं आ छत्रसाल से सभी मिले ।
अपने भविष्य से भीत सभी, संगठन रज्जु में दृढ़, तत्पर,
मिलते आक्षमा प्रार्थना कर, अपने आपसी विवादों पर ।
अनुशासित बुंदेला-जनकों ज्यों मातृमही की भक्ति मिली,
इस सुदृढ़-संगठन के बल पर, हिन्दूजन को नव-शक्ति मिली ।
डबरा में धुरमंगद बख्शी, छत्ता ने भेजा पत्र-दूत,
वह धूम-घाट पर जा पहुंचा, लेकर अपने योद्धा-सपूत,
भिड़ गया 'फिदाई खाँ' से वह, योजना-बद्ध यों छापाकर,
मारा मुगलों को घेर-घेर, भागे हड़-बड़ वे तितर-बितर ।
जब यह सुजान को पता चला, बुंदेलखंड में छत्रसाल
हो रहा प्रभावी, पुनः खड़ी कर सैन्य-शक्ति अपनी विशाल,
आतंकित सा हो गया, सोचता अपने मन में यो बिहाल,
संभव है मुझसे भी बदला ले, वीर पिता का, छत्रसाल,
धुरमंगद ने कर दी ऐसी 'खाँ' की जो विकट पिटाई थी,
बंदी हो सकता था सुजान, यदि दृष्टि फिर गई 'शाही' की ।
अति परेशान हो रहा सोच, आँधी-सी मन में छाई थी,
हो सकता था वह राज्यहीन, आई थी घड़ी तबाही की
धुरमंगद अति उत्साहपूर्ण, संगठन-शक्ति अनुमान लिया,
'छत्ता' प्रवीर के साथ रहूँगा जीवन भर, मन में ठान लिया,
बुंदेलों को विश्वास हुआ, छत्ता ही वह योद्धा-महान,
बुंदेलखंड निज धर्म, जाति कारक्षित, रख सकता स्वाभिमान,
(शनि ५-३-६४)

छत्रसाल और ओरछा-नरेश सुजान सिंह

जब सुना सुजान सिंह ने, उस बुंदेल खंड परिवर्तन को,
किंकर्त्तव्य-विमूढ़ लौट देखा, व्यापक छत्ता-अभिनन्दन को ।
हत-बुद्धि, बैठ, मिल स्वयं मंत्रियों में करके अपने विचार,
थे सभी छत्र की ओर झुके, अब मुक्त नहीं था अन्य द्वार ।
अतएव नितांत अकेला था, सोचने लगा- "अब मार्ग उचित,
निज वैरभाव को त्याग, छत्र से मिलना ही होगा समुचित ।"
अतएव सभासद रतीराम को, पत्र सहित संदेशा दे-
भेजा फिर शीघ्र क्षमा-अर्चन-हित छत्रसाल की सेवा में ।

अब छत्रसाल ने कर विचार, ओरछा-ओर प्रस्थान किया,
शुभचिन्तक मित्रों के आग्रह को भी ज्यों अनसुना किया।
"कहते यथार्थ ही आप, ओरछा वाले विश्वसनीय नहीं,
पर राष्ट्र-संगठन के पथ में, गृह-कलह आपसी ठीक नहीं।
आनुवंशिक जो वैमनस्य-घोर, विस्मृत कर मन से छत्रसाल,
आकर सुजान से मिलें स्वयं, लेकर स्वराष्ट्रदायित्व भाल।
लगता था प्रथम असंभव जो, वह वैर भुलाना कठिन काम।
पर, राष्ट्र-व्रती, परमार्थव्रती, विद्वेषहीन छत्ता सुनाम।
आ गये ओरछा स्वयं, सुना जैसे सुजान ने हो प्रफुल्ल।
स्वागत से, गले लगा भेंटा, निज राजमहल से स्वयं निकल।
वंशानुगत अभिवादन कर, छत्ता ने भी सम्मान दिया,
विगलित अतएव सुजान, हृदय से आत्म-समर्पित स्वयं हुआ
'हे वीर शिरोमणि छत्रसाल ? प्रिय तुम बुंदेली श्वांसों में।
यह देश-जाति-संदर्भ-लाज अवशिष्ट तुम्हारें हाथों में।
तुम केवल कर सकते सुधार, जो हुआ हमारा पतन घोर।
हम मिटे स्वार्थ के पापों से, मन में दुख की पीड़ा कठोर।
सिर पर चढ़ कर ज्यों बोल रहा, जो किया घोरतम पाप यहाँ।
उस रुग्ण, वृद्ध, चंपत प्रवीर के साथ हाय ! अन्याय महा।
उनके निधनोपरांत दुखद, हिन्दू-समाज हो गया निबल,
हम भोग रहे अब वही पाप, जो सता रहे इस भाँति मुगल।
सब टूट गया हिन्दू-समाज, नेतृत्व नहीं वह रहा सबल,
तन टूट गया, मन टूट गया, निस्तेज हुए हम यों हत-बल।
पर वीर शिरोमणि ! उदीयमान रवि, तुम बुंदेलखंड नभ के,
बुंदेला वीरों का प्रचंड, वह तेज भरेगा क्षितिजों से।
उनकी प्रचंड असि नहीं कभी, अब होगी मुगल-समर्थन में,
असि-धारें लप-लप चमकेंगी, निज देश धर्म-संरक्षण में।
वह विगत प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त होगी स्वदेश की धरती को,
प्रभु नया तेज बल देगा ही, हे वीर! तुम्हारे भुजबल को।"
पर छत्रसाल का ध्यान प्रभावित, था इस विगलित स्तुति से।
वे तो आये थे, शंकायें हरने, सुजान के अंतर से।
मुस्करा पुनः बोले- "राजन् ! मेरी कटि में तीखी कृपाण,
बाँधी थी वीर पिता ने ही, कंधे पर धरकर धनुषबाण।
पर वर्तमान असि संगिनि जो, गुरु वीर शिवा के हाथों से,
है बँधी भवानी-वरदानी, रक्षाहित धर्म, अनाथों के।
मुझको स्वदेश, जन-रक्षाहित, उन पितृदेव ने जन्म दिया,
आया हूँ मात्र निवेदन ले, भूलें, सब कुछ, जो कभी किया।

आपस में ही लड़ना-भिड़ना, है किसी भाँति भी उचित नहीं।
घर की ही फूट डुबा बैठी, हिन्दू-समाज को बात सही।
इसलिए भुला वह शत्रुभाव, मिल उर में नव उत्साह भरें,
अतिचारी मुगलों के विरुद्ध, अपनी ऊँची तलवार करें।
लड़ चुके बहुत जो लड़ना था, अब तक हमको जो, आपस में,
यह उचित नहीं, निज शक्तिनाश करते जायें, लड़ आपस में।
वह शत्रु विधर्मी सन्मुख जो, आओ उसका प्रतिकार करें।
उसको निकाल, निज मातृभूमि की मुक्ति हेतु करवाल धरें।
इतने पर भी यदि शत्रुभाव आपसी नहीं मिटता उर से ;
'दुर्भाग्य देश का' बस इतना ही, कहना होगा अति दुःख से।
हम क्षत्रिय देश-धर्म-रक्षक, बनकर जन्में हैं धरती पर।
लज्जास्पद कितना भीरु बनें, हम पापी मुगलों के चाकर।
यदि नहीं समझते तो चलता मैं, पुण्य करें या पाप करें,
मुझको करना जो मैं करता, जैसा जो चाहें आप करें।"
छत्ता की ओजस्वी वाणी के इन अद्भुत संघातों पर,
गड़ रहा लाज से था सुजान, पछताता अपने पापों पर (९-३-९४)
बोला- "हम इतने नीच रहे, मेरे निकृष्टतम पापों से-
नरपुंगव चंपतराय आत्महत्या कर निज संतापों से।
हो गये मुक्त, हम संतापित हो रहे आज दुख से अपार,
वह सोच स्वयं पछता रोते, जो किया पापमय अनाचार।
उपकारी सदा हितैषी जो था, उस पर जो अपघात किया,
प्रायश्चित न संभव रोने से, जो हमने भीषण पाप किया,
तब भी चंपत की आत्मा की, प्रस्रवित वही शुभेच्छायें,
आये प्रिय! बैर भुला, हरने मेरे भी मन की पीड़ायें।"
हो रुद्धकंठ कायर सुजान, ले हाथ भाल पर छत्ता का,
मन में रोता बैठा, सहसा जागा ज्यों ज्ञान महत्ता का।
ले साथ राम-राजा मंदिर पर आया, प्रभु को झुका भाल,
साक्षी में प्रभु की वचनबद्ध, अब स्वयं हो गया था नृपाल।
"तन-मन-धन से निज धर्म-देश की रक्षा में हम एक साथ,
बुंदेलखंड की रक्षा में, हम जिएं-मरेंगे एक साथ।"
संगठन कार्य की ओर झुके, अब छत्ता अधिकाधिक तत्पर।
सब मित्र पिता के पुनः जुटे, निज देश आन की रक्षा पर।
गोविन्दराय, रामनदौआ, धुरमंगद, वख्शी, मेघरात,
कुँवर नरायनदास मानशा, फत्ते-बनिया, भानुभाट।
सुंदरमन, फौजे मियाँ मीर, हरवंश वीर, पंबल कहार,
रणधीर किशोरीलाल चतुर, लच्छे रावत, अति बल अपार।

प्रति गाँव-गाँव से निकल पड़े, रणबाँके निर्भय सुभट धीर,
हिन्दू-समाज के वर्ण-वर्ण के नायक सिमटे महावीर ।
छत्ता के ध्वज-तल आन जुड़े, भारत-माता का मान लिए ।
निज धर्म-धरा की मुक्ति हेतु, बलिदानों का अरमान लिए ।
चमकी असिधारें अंबर में, भालों की नोकें तीव्र तनी ।
रणवीरों की हुंकारों से, अब गूंज उठी भारत-अवनी ।
कर्तव्य मान निज वीर चले, अपने नेता के साथ-साथ,
यदि नहीं चले तो देश-धर्म के प्रति होगा विश्वास घात ।
फिर रतनशाह से मिले, बंधु ने उचित न माना इस पथ को,
अव्यवहारिक योजना व्यर्थ, आमंत्रित करना संकट को,
असमर्थता प्रकट की संगति में, छत्ता आगे निज मार्ग चले ।
प्रभु-इच्छा का विश्वास लिए, करने रण की घोषणा चले ।
बागौदा में बलदाऊबंधु, आ स्वयं सैन्यबल सहित मिले ।
नेतृत्व हेतु छत्ता को ही निर्वाचन के थे भाव खिले ।
पर छत्रसाल ने कहा, वीर बलदाऊ मेरे ज्येष्ठ बंधु,
सब लोग समझकर निर्णय लो, फिर चले मुक्ति का कार्य-बन्धु !
अतएव वृद्ध सज्जन प्रवीर, चंपत के जो थे मित्र प्रवर,
दो पत्री लिख प्रभु-चरणों में, रख दीं समीप के मंदिर पर,
दोनों ने ही जब पत्री लीं, पैंतालिस पर बलदाऊ वीर,
छत्ता पचास का अंक लिए, संचालक रण के हुए धीर,
संचालक सह-संचालक अब, दोनों ही बाँके बंधु हुए ।
प्रभु निर्णय का विश्वासपूर्ण, अपने मन में संतोष लिए,
आपस में दोनों लिपट गये, सह-योद्धा सारे अति प्रसन्न,
थे पंक्ति-बद्ध सब शपथ हेतु, प्रभु के सन्मुख उत्साहपूर्ण ।
प्रण किया सभी वे धर्म-देश की रक्षा का दृढ़ ध्येय लिए ।
'बुंदेल खंड को मुक्त करेंगे मुगलों से,' संकल्प हिए ।
ये चार नियम भी निर्धारित, वीरों ने मिलकर वहीं किया,
'जिनको पालन करना होगा प्रत्येक वीर को' मान लिया -
'निज छात्र-धर्म-पालन-तत्पर, अरि पर रख निज बल का दबाव,
तन-मन-धन से, निज ध्येय, मुक्ति को वरण करेंगे', रहे भाव ।
होने देंगे अब शिथिल नहीं, किंचित स्वमुक्ति अभियान धीर !
प्राणों की बाजी लगा, हरेंगे, देश-धर्म की गहन पीर,
जो देश-धर्म के शत्रु, प्रजा-पीड़क जो अतिचारी होगें,
संहार करेंगे उन सबका, अदंडित कभी न छोड़ेंगे ।
निज मातृभूमि की सेवा-रत, संरक्षण देता अपनों को,
प्रत्येक सदा सन्नद्ध रहे, दंडित करने को यवनों को,

छोड़ेंगे कभी नहीं ऐसे राजाओं-सूबेदारों को
हिन्दू-जन के जो अपकारी, देते सहायता मुगलों को ।
हिन्दू हों, संबंधी चाहे, हों मित्र हितैषी भी भारी,
पर मुगल-सहायक जो, उनको कुछ क्षमा नहीं होगी न्यारी ।
इस धर्म-युद्ध में यदि वे भी, मुगलों से लड़ने को तत्पर,
तो साथ उन्हें लेंगे, परन्तु सब भाँति परख उनकी लेकर ।
स्वीकारा सब ने नियम वहीं, दृढ़ता से पूर्ण समादर से
दिग्विजय-हेतु सन्नद्ध वीर, धम-धम धौंसा-ध्वनि से हरषे ।
निज धर्म-धरा की मुक्ति हेतु गर्जन करते बलवान चले ।
घोषणा युद्ध की सुन गृह-गृह से निकल वीर बलवान चले ।
अफगान लुटेरा बाकी खाँ, कर त्यक्त समस्त लुटेरापन,
आ गया साथ बुंदेलों के, रख शीर्ष नाम बुंदेला बन ।
जुड़ रहे अनेकों वीर युवा, संगठित हो चली शक्ति सबल,
भयभीत सभी जो मुगल भक्त, कंपित दिल्ली का मुगली दल ।

छत्रसाल और धँधेरे-

उत्साही सेना लिए छत्र, धंधेर खंड की ओर चले,
उनको उनके विश्वासघात का फल देने अविलंब चले,
मरणोत्तर चंपतराय-शीश धंधेरों ने था काट लिया,
निज स्वामिभक्ति का ज्यों प्रमाण, दिल्ली पति को था भेज दिया,
अतएव कृतघ्न धंधेरे जो, मुगलों से रहते हिले-मिले,
हिन्दूजन पर जो अतिचारी, उनसे निपटें, अब दाँव तले ।
धंधेर खंड का कुँवर सेन, धंधेरा-शासक मुगलभक्त,
सामने युद्ध के हेतु डटा, दुस्साहस से पर हुआ नष्ट ।
भागा अनुवर्ती साथ लिए, निज सकर हटी की गढ़ी ओर,
बढ़ घेर लिया पर छत्ता ने, तोपें बंदूकें चलीं घोर ।
आहत धंधेरे भगे, किन्तु वीरों ने पथ को घेर लिया,
गाजर-मूली-सा काट चले, धंधेरों को अब भोर हुआ,
दे धर्म-दुहाई क्षमा हेतु, तत्काल संधि-प्रस्ताव किया,
आधीन हुए अब छत्ता के, वह चौथे दान स्वीकार किया ।
प्रण किया अटल, 'अब नहीं कभी मुगलों की सेवा में होंगे,
बुंदेलखंड की सेवा में, अपना तन-मन-धन सब देंगे ।
'हो संधि- अटल' इस हेतु शीघ्र उस कुँवर सेन ने निश्चय कर,
प्रिय 'दान-कुवँरि' को व्याह दिया, छत्ता को, सन्मुख जोड़े कर ।
पश्चात् शीघ्र आधीन किया, निज प्रथम शत्रु रतनागर को,
फिर बढ़े राज्य-विस्तार हेतु, मालवा, सिरोंज-सहनिया को ।
पहुँचते वहाँ मुगली चौकी-दल से भारी मुठभेड़ हुई ,
पर हार भगे अति शीघ्र, विजय श्री छत्ता को ही प्राप्त हुई ।

हाशिम खाँ की पराजय -

निज प्रबल विजय-वाहिनी लिए, जब आगे ओडर-ओर बढ़े,
हाशिम खाँ मुगली-फौजदार, आनंदराय चौधरी चढ़े ।
सह-सैन्य तीन सौ ले आगे, वे छत्ता का पथ-घेर खड़े ।
था ज्ञात हो गया पथ छत्ता का, इसीलिए सन्नद्ध अड़े ।

धौंसा सुन, छत्ता ने आगे, तत्क्षण तोपची सतर्क किए,
फिर गुप्त मंत्रणा दे सैनिक दल, पृष्ठ भाग में भेज दिए ।
कुछ सैन्य सुभट ले स्वयं शीघ्र, सन्मुख हाशिम की ओर बढ़े ।
सोचा हाशिम ने फूट पड़ी, छत्ता-दल में, जो शेष अड़े ।

इसलिए सैन्य ले दौड़ पड़ा, पर अकस्मात ही 'छत्र मुंडे' ।
पीछे बलदाऊ, बाकी खाँ, केशरी सिंह अरि घेर चढ़े ।
झपटे हाशिम पर घेर चतुर्दिक से, पठान भागे परास्त
तिवरी, सिरौंज, सब क्षेत्र लुटा जिससे अभीष्ट धन हुआ प्राप्त ।

सीधे ओडर पहुँचे, पटेल को पकड़ कोष अधिग्रहण किया
संपत्ति मिली जो, निज सैनिक दल में ही सारी बितर दिया,
थे अति प्रसन्न अनुयायी सब, पिपरहट लूटते वीर बढ़े,
झाँसी जनपद, भंडोरा के, धौरा-सागर में पहुँच गये ।

जागीरदार वह दामाजी, सह-सैन्य छत्र के साथ मिला,
ले शक्ति सैन्य-सेनानी तब, चल चित्रकूट विश्राम किया ।

धामौनी-विजय-

अब छत्ता की जमगई धाक व्यापक मुगली सरदारों में,
आतंकित से हो रहे सभी, सुन कौशल रण-व्यापारों में,
आ गये बहुत हिन्दूराजे, ध्वज के नीचे, करते प्रणाम,
फिर धामौनी की विजय हेतु, उठ चले छत्रतज कर विराम ।

खालिक खाँ अति उत्पाती जो, धामौनी का था फौजदार,
की सुदृढ़ किला बंदी उसने, प्रति गाँव खड़े सैनिक सवार ।
जब ज्ञात हुआ यह छत्ता को, तो सोच-समझ करके विचार,
सिदगवां पहाड़ी क्षेत्र ओर, बढ़ चले, लिए सैनिक सवार ।

सिदगवां वनों के पार, सैन्य सह खालिक था सन्नद्ध खड़ा,
चल रहे छत्र थे व्यूह बंद, इसलिए चतुर्दिक वही घिरा ।
कुछ आठ दिवस खालिक खाँ ने, छत्ता से भिड़ सामना किया,
पर हुआ आक्रमण जो सुतीक्ष्ण, खालिक दल रण से भाग गया ।

अब छत्रसाल ले सैन्य प्रबल सीधे धामौनी ओर बढ़े ।
खालिक ने आगे सैनिक दल, चंद्रापुर में एकत्र किए ।
पर हुआ पराजित शीघ्र भगा, फिर अड़ा रानगिरि में आकर
धामौनी की नाके बंदी कर, छत्र बढ़े तत्क्षण तत्पर ।

अति घमासान रण-रंग हुआ, जूझे खालिक के सैन्य वीर,
आहत हो बंदी हुआ स्वयं, बेवश अब झुकने को अधीर।
छिन गये नगाड़े, तोपें-बंदूकें तुरही सब रण-निशान ।
दे तीस हजार रौप्य-धन फिर, पाया छत्ता से प्राण-त्राण ।
लूटा सारा धनकोष, क्षेत्र धामौनी पर अधिकार किया,
फिर मैहर पर अधिकार हेतु, निज अश्व-बाग को मोड़ दिया।
बालक मैहर-जागीरदार, माँ थी उसकी संरक्षिका बनी,
सेनापति माधव सिंह गूजर, उसने थी रण की ठान ठनी ।
मैहर पर धावा कर छत्ता ने, शीघ्र किले को घेर लिया,
बारह दिन कर संग्राम घोर, उस पर अपना अधिकार किया।
बंदी माधव सिंह मुक्त हुआ, वार्षिक स्वीकृत कर त्रय हजार।
साथ ही चौथ नियमित देना भी, किया संधि में स्वीकार ।

बाँसा का धर्म युद्ध -

मैहर से दल-बल सहित शीघ्र छत्ता बाँसा की ओर फिरे,
घेरा डाला जागीरदार आधीन बने, संदेश दिया ।
जागीदार केशव दाँगी, था पराक्रमी बल-अभिमानी,
थी सैन्य शक्ति भी बड़ी, सँदेशा था विरुद्ध उसके मानी।
तिलमिला क्रोश वश अंदर से, आधीनता नहीं स्वीकार किया,
आदेश दिया तत्क्षण उसने, अपनी सेना तैयार किया ।
फिर छोड़ सैन्य को एक ओर बढ़ चला अश्व पर वह इकला,
ललकारा - है वह कौन वीर वर छत्रसाल नर बुंदेला ।
सुनता उसकी रण-धाक जमी, आया जो लेकर यहाँ फौज,
आधीन बनाने को मुझको, देखूँ मैं उसका क्षात्र-तेज ।
पर मंत्रीगण ने छत्रसाल को, सैन्य बिना रण की सलाह -
दी नहीं, क्योंकि बस वे ही थे, सब की आशा अवलंब चाह,
सब की इच्छा थी बलदिवान, इकले केशव से द्वंद्व करें,
वे स्वयं महा बलवान वीर, भाले का कौशल प्रकट करें।
बलदाउ उठे हो अति प्रसन्न, छत्ता-समान जो धीर-वीर,
पर निर्णय ज्यों प्रतिकूल लगा, छत्ता कब ऐसे रहे भीरु ?
रख बलदाऊ के पीठ हाथ, रुकने का ज्यों संकेत किया,
अपने घोड़े को ऐंड़ लगा, केशव-सन्मुख जा खड़ा किया।
केशव बोला- 'क्या तुम्हीं छत्र? तुम तो बालक नादान वीर।'
सोचा था सन्मुख भेंटेगा, कोई रण-बाँका सुभट धीर ।
अच्छा स्वीकृति देता तुमको, हथियार चलाओ प्रथम तुम्हीं,
संभवं, अपूर्ण ही रह जाये, आपकी लालसा मन में ही ।
छत्ता बोले- "था सुना, अतिथि सेवक हैं केशव राय बड़े,
पर देख रहा, वे यहाँ मात्र सेवा-करवाने हेतु खड़े ।

था सुना कि केशव राय महायोद्धा, रण-कौशल के प्रवीर,
पर देख रहा अन्यथा, मात्र बातूनी लगते वे गँभीर।"
वाकोत्तेजित हो केशव ने, बरछी से तीव्र प्रहार किया,
छत्ता ने सन्मुख ढाल किया, पर शैली की सराहना किया।
साथ ही उछाल अश्व अपना, निज साँग वक्ष में बींध दिया,
हो गई कहानी ज्यों समाप्त, ऐसा था तीक्षण वार किया,
केशव की तत्क्षण असि निकली छत्ता पर करने को प्रहार,
पर छत्रसाल की साँग बींध उसकी छाती कर गई पार।
वह हाथ उठाते गिरा, छत्र ने साँग खींच, सिर काट लिया,
रह गई शेष साहस करनी, सेनाओं ने जयकार किया।
केशव दाँगी के गिरते ही, भिड़ गई परस्पर सेनाएं,
विजयिनी हुई पर छत्ता की, विजयिनि रण-दीक्षित सेनायें।
रण भूमि बिछे दाँगी योद्धा, सैनिक कट रण में बिखर गये,
बाँसा नगरी के धाम कोट, सब बुंदेलों ने लूट लिए।
केशव का आत्मज विक्रमसिंह, आ छत्रसाल की शरण हुआ
आधीन सदा ही रहने का, उसने अपना दृढ़ वचन दिया।
निज सैन्याधिकारी बना अस्तु, उसको ही बाँसा राज्य दिया।
उसका समस्त धनकोष, वहीं उसको ही वापस दिला दिया।

बहादुर खां की पराजय-

सीरोंज-युद्ध से समझ गये, जितने भी मुगली सेनापति,
डाकू या मात्र लुटेरा छत्ता नहीं, वरन वह हिन्दूपति।
वह वीर शिवा की भाँति, मुगल-उच्छेदन के हित सप्रयत्न।
हिन्दू भारत की रक्षाहित, उसकी सुनियोजित लगी लगन।
कटु शत्र मुगल-भक्तों का वह, हिन्दूजन करते उसे प्यार।
दृढ़ हिन्दु समर्थन प्राप्त उसे, जन-बल ही उसका दृढ़ाधार।
सीरोंज, मऊ, धामोनी फिर, बाँसा मैहरगढ़ सभी ढहे,
दृढ़ शक्ति छत्र की ज्यों विलोक, मुगली शासक मन सभी डरे।
अतएव जहाँ जो भी नियुक्त सेनापति, गढ़पति, सुबेदार।
छत्ता-विनाश हित घात लगा, सब करते थे बैठे विचार।
वन में चलते सह-सैन्य श्रमित, छत्ता सँग घटना घटी एक।
सेनापति एक बहादुर खाँ ने घेर लिया, पथ दिया छेक।
सह-साधन घेरा डाल खड़ी, ग्वालियर-सैन्य जो वह विशाल।
अतएव शीघ्र निज सूझ-बूझ का, परिचय देते छत्रसाल।
अपनी सेना चुपचाप वहीं, घाटी में शीघ्र उतार दिया,
चल शीघ्र पठारी-पथ से, बाकी खाँ घर जा विश्राम किया।

श्री श्रमित सभी सेना अतिशय, फिर व्यर्थ युद्ध से मिलना क्या ?
धन रहा लूट का साथ सभी, अरि से फिर व्यर्थ उलझना क्या ?
क्रमशः घेरा छोटा करता, वन-मध्य बहादुर खाँ आया,
आश्चर्य हुआ जब छत्ता का, कुछ चिन्ह नहीं उसने पाया।

जब वह भी घाटी ओर धँसा, उसमें भी नहीं कुछ हाथ लगा,
हो परेशान यों, लौट गया, सिर धुनता संकट आप भगा।
वाकी काँ सच्चा मित्र रहा, कुछ दिन तक छत्ता वहीं रहे।
की पूर्ण व्यवस्था उसने ही, वैद्यों ने सैनिक घाव भरे।

आखेट-प्रेम था छत्ता को, लेकर अपने दस बीस वीर,
चुप चाप निकलते मृगया-हित, असि बंदूकें ले धनुष तीर।
मुगलों का था जो फौजदार, रण बाँका सैयद बहादुर खान,
जासूसों से पा पता, धँसा वन में लेकर सैनिक अमान।

थी विकट समस्या, छत्ता ने, पर वीरों को यों दिया धान।
जिस ओर फिरीं वे सेनाएं, पीछे बरसीं गोलियाँ-वाण।
गिन-गिन सैनिक बन रहे लक्ष्य, अतिशय अचूक गोलियाँ बाण।
था समझ न पाता किधर कहाँ, कितनी अरि सेना का धसान।

वह भाँप न पाया, लगा उसे जैसे वह स्वयं व्यूह-भीतर,
घिर गया शत्रु की सेना में, भयभीत अस्तु भागा आतुर।
मृगया से लौटे छत्रसाल, सैनिक-मित्रों को पता चला,
खेली मृगया जो नयी आज, छत्ता की अद्‌भुत शौर्यकला।

करके विराम अब छत्र सैन्य थी स्वस्थ, शक्ति, स्फूर्ति युक्त।
ली बिदा शीघ्र बाकी खाँ से, करते हार्दिक आभार व्यक्त।
इच्छुक थी सेना, शीघ्र नये अभियानों हित अपने सशक्त,
चल पड़े मुगल केंद्रों को करते दलित पराजित और ध्वस्त।

ले लिया 'बराबर' सहजरुप, फिर शीघ्र 'पवाया' ओर चले,
तेजस्वी थे अभियान प्रखर, सुन-सुन मुगलों के दिल दहले।
चिंतित अब औरँगजेब बहुत, छत्ता को करने को परास्त,
अब रुहल्ला रणदूल्हा खाँ, आ डटा महोबा और राठ।

आक्रमण हेतु तैयारी की, पर साहस उसको हुआ नहीं।
किस भाँति छत्र से युद्ध करे, सूझी वह कोई राह नहीं।
संभावित इस आक्रमण हेतु, छत्ता सागर की ओर मुड़े।
कर वहाँ उचित मोर्चा-बंदी, तत्काल मऊ की ओर चले।

मुनब्बर खाँ की पराजय-

अबदूलह खाँ था शाँत, मुनव्वर हुआ ग्वालियर सुबेदार,
आ घूमघाट पर रुके छत्र, उसके स्वागत हित ज्यों तैयार,
उस ओर मुनव्वर खाँ ने भी, जैसे ही पाया समाचार,
रणवाद्य धमकता आधमका, ले अपने सैनिक घुड़ सवार।

सन्मुख आ गई शत्रु सेना, अवलोक छत्र थे अति प्रसन्न,
पहले से ही रच सुदृढ़ व्यूह, ज्यों रहे प्रतीक्षारत अचैन ।
अब फड़क उठीं रणधीर भुजा, झन-झन निकलीं असि तनी ढाल,
धनुशर सुलक्ष्य पर, सधी भरी बंदूकों की स्कंध नाल ।
गरजे रण-सिंह झपट टूटे, अरि की सेना को घेर -घेर,
मच गई भयंकर मारकाट, मुगली सैनिक कट गिर ढेर ।
अति अकस्मात आक्रमण हुआ, सँभली थी नहीं मुगल सेना,
निज व्यूह बंद हो सके नहीं, आते ही था लड़ना मरना ।
बुंदेलवीर कम संख्या में, पर हुए मुनव्वर पर भारी ।
कट रही चतुर्दिक मुगल सैन्य, किस ओर लड़ें, थी लाचारी ।
बुंदेलों का वह तेज देख, पीछे हटने को हुई विवश,
तब भी न रुकी वह मार विकट, ली शरण दुर्ग के भीतर धँस ।
पीछा करते बुंदेल बढ़े सब लूट ग्वालियर किया ध्वस्त ।
दृढ़ दुर्ग घेरना उचित न था करना था केवल समय नष्ट ।
भयभीत मुगल सेना इतनी, वह दुर्ग त्याग कर कढ़ी नहीं,
सीधे चढ़ गये कंजियों पर, अब अधिक छत्र भी रुके नहीं ।
आ गया मुहम्मद हाशिम भी, आनंद राव भी सैन्य सहित ।
तीनों ने मिल मंत्रणा किया, छत्ता को घेरें दे हित-चित,
थे अभी वहीं कटिया वन में, डेरा डाले वर छत्रसाल ।
तीनों सेनायें तीन ओर, पर डरे नहीं बुंदेल लाल ।
रण-कौशल का था खेल, भगा हाशिम, भगती निज सैन्य-साथ,
आनंदराव बंका आहत, भग चले मुनव्वर हो अनाथ ।
निज विजय-दमामें बजा, बढ़े छत्ता आये फिर हनूटेक ।
मोहार धँधेरे हरीसिंह ने स्वागत कर दी पुत्री 'उदेत'।
थी धाक चतुर्दिक बैठ गई, दुर्द्धर्ष वीर वर छत्रसाल ।
कुछ दिवस रहे वे हनूटेक, मृगया में बीता सुखद काल ।
सीमा में धँस करते तब भी मुगली सैनिक कुछ लूट मार ।
मृगया रत छत्ता थे वन में, सुन पड़ा पास में चीत्कार ।
उस ओर जल रहा वन्यग्राम, थे मुगल कर गये लूट मार ।
थी ग्राम्य-किशोरी रुपवती, बँध हस्त पाँव से पड़ी द्वार ।
मर मिटे पिता-भ्रातादिक थे, मुगलों से करते द्वंद्व प्रखर,
असहाय भर रहा चीत्कार निरुपाय कन्यका रुप-बिखर ।
थे चार-पाँच सैनिक लड़ते, आपस में ही रुपसी-हेतु,
कर पाई नहीं आत्म-हत्या, घिर हुई बंदिनी थी अशक्त ।
नारीत्व-सुरक्षा-हित अपने, निजबध-हित करती थी पुकार,
उनके नारकी कुकर्मों को, धिक्कार रही थी बार-बार

थी बँधी स्वघर की चौखट से, कुछ करने में असमर्थ रही,
मुख-मात्र मुक्त, धिक्कारों से करती उनका प्रतिकार रही,
सुन रहे नहीं थे पर पापी, पाशविक वृत्ति का समाधान,
करने को तत्पर, कर निवस्त्र, बालिका रट रही कृष्ण नाम।
सहसा गंभीर गर्जना हुई, आया सन्मुख वह तीक्षण बाण ।
पापी का जो चीरता वक्ष, था निकल गया, संग लिए प्राण ।
भागे जो, मारे गये सभी, बाला अचेत थी वह अनाम ।
खुल गये सभी बंधन तन के, हो गई शील-रक्षा सुनाम ।
ढक दिया वस्त्र किसने तत्क्षण, आ गया वहाँ भगवान कौन ?
जब चेत हुआ, हो चकित कहा- 'हे महावीर ! हैं आप कौन ?
'क्या आप वीरवर छत्रसाल ?' "हाँ देवि ! वही मैं चंपत-सुत-
जिस ओर जहाँ जाना चाहें, पहुँचा देता मैं तुम्हें तुरंत ।"
"जाना भी कहाँ ? मरे मेरे पितु-भ्रातादिक जो रहे यहाँ,
मेरे सँग, लो संपत्ति अतुल, जो भूमि गर्भ में छिपी यहाँ ?
पर बिनती मेरी एक पूर्ण कर देंगे क्या हे देव! अभी ।
"निर्भीक कहो हे देवि ! करूँगा जो सहायता उचित अभी ।"
"मुझ निराश्रिता को भी अपने चरणों में दें स्थान देव !
आराधिका आपकी ही रहकर, जीने की इच्छा रही देव !
होता सुपुत्र पितु के समान, जानते आप यह तथ्य देव !
कामना आप-सा पुत्र जनूँ, मैं कुमारिका गृहणीय देव !"
"हे मातृ शक्ति ! मातृत्व तुम्हारा मुझे पुत्र ले स्वयं मान,
आशीष मुझे दो मातृ देवि ! छू-चरण तुम्हें करता प्रणाम ।"
थी कीर्ति चतुर्दिक फैल गई, मिल रही बधाई जन-जन से,
उनके चरित्र-बल के सम्मुख, झुक गये भाल, जो दुश्मन थे ।
आये सब अति उत्साहपूर्ण, झुक छत्ता का वंदन करने,
जो गुरुजन आये आत्मीय, आशीषों से अंतर भरने ।
आये राजा जागीरदार, स्वेच्छा से चौथ चुकाने को,
जो पूर्ण असहयोगी, आये अपना सहयोग जताने को ।
जो ध्येय-पथी, वह प्रथम पात्र, होता है सदा उपेक्षा का,
उपहास सभी करते उसका, उसके सुलक्ष्य का, इच्छा का,
निर्भीक किन्तु जो ध्येय-पथी, निंदा स्तुति का ध्यान छोड़,
पहनाती उसको मुकुट कीर्ति, देता प्रभु उसको अमर-क्रोड़ ।
यशमान बने उड़ते शाश्वत, उसके प्रशस्ति-ध्वज अंबर मे,
आ निखिल विश्व झुक जाता है, उसके पावन तम चरणों में ।
वे ज्येष्ठ भ्रात प्रिय रतनशाह, आये अपना आशीष लिए,
जुड़ आये वीर बहत्तर जो, युग के अप्रितम रणवीर रहे ।

आये फिर अंगदराय बंधु, छत्ता के जो थे सदा रहे,
छत्ता के ही सकेतों से, मुगली सेना में बने रहे ।
सबने सहमत हो एक साथ, छत्ता को नेता मान लिया,
'अपना बुंदेला महावीर है छत्रसाल,' यह मान लिया ।

फिर रतनशाह बोले- 'कनिष्ठ भ्राता ने अनुपम पौरुष से,
कर दिया मुक्त बुंदेलखंड, यह धरा पूर्ण उसके यश से ।
समझे न उसे, जब उसने आ, मेरी वे आँखें खोलीं थी ।
मैं रहा निराशा गर्त गड़ा, पौरुष की स्मृति भूली थी ।

अब देख रहा निज पिता-तेज, उसमें जो पूंजीभूत हुआ,
वह 'शक्ति पुत्र' भारत माँ का, उद्धारक वीर सपूत हुआ ।
उसके सत्कर्मों से जैसे, मेरा मन निर्मल हुआ आज ।
न्योछावर यह मेरा तन-मन, निज मातृभूमि की रहे लाज ।

हम सब मिल, उसके अनुवर्ती होकर शोभा पायेंगे,
निज देश-धर्म की रक्षा से, पग पीछे नहीं हटायेंगे ।
नेता अपने नर छत्रसाल, सह सेनापति वे बलदिवान,
जय बोलो भारत-माता की, बुंदेल खंड जय बल विधान ।

(रविवार सायं ४ बजे १३-३-६४)

बुंदेल खंड के वीरों की, नव गठित हुई सेना विशाल,
संबोधित करते हुए जिसे, बोले प्रवीर नर छत्रसाल-
'हे बुंदेले वीरों ! देखो, निज वीर प्रसविनी मातृभूमि,
कायरता और भीरुता से अपनी ही है, वह पराधीन ।

परकीयों से हो पदाक्रांत, अपमानित आँसू बहा रही,
आसुर पीड़ाओं से व्याकुल, अंचल से मुँह ढक सिसक रही ।
हम रण-बाँकुरे पुत्र उसके, लड़ आपस में हो रहे चूर,
पारस्परिक द्वेष की ज्वाला में हम झुलस हो रहे राख-धूर ।

मुगली सत्ता छिड़कती नमक, ज्यों आज हमारे घावों पर,
हम वीर-धरा के हो सुपुत्र, असमर्थ पड़े रोते भू पर ।
हम दिग-दिगंत में, मातृभूमि का विजय नाद भरने वाले,
होकर समर्थ भी, है अशक्त, निज स्वार्थ फूट के व्रण पाले ।

हम में क्षमता, हम ला सकते, सुख शांति-प्रेम भू पर उतार,
पर तुच्छ स्वार्थ-वश, उचित कहाँ? सर्वस्व लुटाना इस प्रकार ?
अब अधिक नहीं ऐसा कदापि, होने देंगे बुंदेल बाल,
होंगे न पृथक, अब बाहों से, बंदूक, बाण, असि और ढाल ।

कायरता का जीवन जीने, ढोने को निकृष्टतम दास्य पाप,
माता को पीड़ा दी थी क्या, यों सहने को अन्याय ताप ?
हम हिन्दू हैं, हम जीवित हैं, अपने स्वतंत्र आदर्श हेतु
यह ध्यान रहे, 'हम बाँधेंगे अपना शुचि शाश्वत-धर्म सेतु ।'

विक्रमी पराक्रम-पोषक हम, रण-मृत्यु मात्र क्रीड़ा अपनी,
आत्मा अमर अविनाशी वह, फिर भय क्या? चिंता क्या इतनी?
लघु चिनगारी जब जगती है, करती सारा वन भस्म सात
लघु रश्मि प्रकाशित होते ही, मिट जाती पल में तिमिर छाप।
कर्त्तव्य निष्ठ जो आत्म बली, डरते न बिघ्न-बाधाओं से
निज धर्म सँभाले, विजयवरण, करते पौरुष की बाहों से।
वीरो ! हम कहाँ अकेले हैं, भगवान हमारे सदा साथ,
समझो वह विजय हमारी ही, जब जुड़े लक्ष्य पर लक्ष हाथ।
देखों छत्रपति शिवाजी को, वे महाराष्ट्र केसरी-वीर,
किस साहस से, रण-कौशल से, मुगलों की छाती रहे चीर।
कर लिया हिन्दु-संगठन सुदृढ़, सब ऊँच-नीच के भुलाभाव,
निज मातृभूमि-उद्धार-हेतु, सबके अंतर में एक चाव,
आसुर-सत्ता करते विनष्ट, तन-मन-धन से भिड़ हिन्दु वीर !
माता के बंधन काट रहे, रण-कौशल से तलवार-तीर।
बुंदेली विक्रम की बाहें, अपनी भी, असिमें, प्रखरधार,
कर सकते क्या हम नहीं सभी, पापी असुरों का प्रतीकार ?
आओ झोपड़ियों से लेकर, उन राजमहल तक एक साथ,
तज ऊँच-नीच का भेद, द्वेष, निज-मुक्ति-ध्येय पर जुड़ें हाथ।
प्रेरणा-मंत्र फूँके, घर-घर, हों हिन्दु परस्पर सहयोगी।
सब प्रेम-धर्म से अनुशासित, सब बनें मुक्ति पथ के योगी।
समवेत जगो ओ हिन्दु-बंधु, यह प्रेम-पूर्ण हो महामंत्र।
फिर पांचजन्य उद्घोष भरे, निज धर्म-देश होगा स्वतंत्र।
उद्‌बोधन आत्मिक प्राणवान, सुन सभी उल्लसित हुए वीर।
नव दिशा ज्योति पा जाग पड़े, जै-जै स्वर नभ को रहा चीर।
जुड़ चले युवा रण-धीर सुभट, बढ़ चली वाहिनी अति विशाल,
कटि-कंधों पर थीं लटक रहीं। सबके तीक्षण तलवार ढाल,
अब हनूटेक से मऊ ओर, छत्ता ने फिर प्रस्थान किया,
मृगया में भेंटे प्राणनाथ, गुरु ने प्रणाम स्वीकार किया।

(मंगलवार १५-३-६४)



१० स्वामी प्राणनाथ

वे परोपजीवी, अकर्मण्य, श्मश्रु, जटा, गेरुवा पहन,
जो उदरपूर्ति-हित साधु बने, द्वारे-द्वारे कर भिक्षाटन ।
पर होते हैं कुछ व्रती साधु, जिनमें संयम, तप काल-ज्ञान,
जिनको स्वधर्म, संस्कृति, स्वदेश मानव-सेवा कर्त्तव्य-ध्यान ।

वे महत् साधुजन, आत्मसिद्ध योगी, स्वराष्ट्र-हित-चिन्तन-रत,
अतिचारी शासन का विरोध, करते समाज की सेवा-रत ।
स्मरण करो उन ऋषियों का, जिनकी मानव-सेवा महान,
दे गये धरा को निस्पृह वे मानव-हित में वह धर्म-ज्ञान ।

कल्याण सदा हो भूतल का, शुचि ईश भक्ति-मय प्रेम-बेलि,
पल्लवित रहे, बरसा भू पर, शुचि शांति-सौख्य के कल्पफूल,
वे सहज हितैषी प्राणि-मात्र-हित, भरे कमंडल करुणा-रस,
छिड़कते, फिरा करते भू पर, वे प्रेम-भाव के भरे कलश ।

जन्में ऐसे वे प्राणनाथ, काठियावाड़ के जाम नगर,
क्षेम जी केशवा धन बाई के पुण्यांचल के सुमन सुघर ।
अग्रज गोवर्द्धन सहज संत, करते संतों का सहज मान,
दीक्षित सुसंत गुरु देवचंद्र से, पाया उत्तम धर्म ज्ञान ।

वैराग्य-प्रवर हो प्राणनाथ, बालकपन से ही हुए संत ।
संस्कार-प्रबल ज्यों पूर्व जन्म का ज्ञान पूर्ण अंतर अनंत ।
इच्छा थी गुरु की प्राणनाथ, हों भ्रमण-शील भारत-भू में ।
सद्धर्म प्रचारक राष्ट्र-व्रती, शुचि ज्योति भरे भू-मंडल में ।

ज्ञानी सुसंत उस बालक ने गुरु-आज्ञा कर ली शिरोधार्य,
भावी जीवन ज्यों संकल्पित, उद्यत करने को धर्म-कार्य ।
समयानुकूल ही व्याह हुआ, बाई से साध्वी प्रिया कांत,
दोनों समान गुण-धर्म प्राण, निर्मल स्वभाव, पावन-प्रशांत ।

पर इसी समय प्रभु कृपा हुई, प्रिय पिता दूर परलोक गए,
गृहभार सँभाले जामनगर में मंत्री सुधी नियुक्त हुए ।
दायित्व सँभाले रहे किन्तु धार्मिक-पथ से न कभी विचले,
गुरु देवचंद्र जब स्वर्ग चले, तो वे भी पद को छोड़ चले ।

फिरते विभिन्न भागों में, भारत भर का जीभर भ्रमण किया,
मिलते योगी-आचार्यों से, धार्मिक-चर्चा भी बहुत किया,
धर्मोपदेश दे जन-जन को, भक्तों की शंका-समाधान,
करते फारस भी पहुँच गये, जन-जन को देते धर्मज्ञान ।

हो गये हजारों व्यक्ति शिष्य, सर्वत्र संत-उपदेशों से,
हो शुद्ध-हृदय, नित ध्यान लीन, निष्काम भक्ति जगदीश्वर से ।
जन-सेवा-व्रत संलग्न रहो, पाखंड और त्यागो कुरीति,
सबमें पवित्र वह आत्म-तत्व, भव-आकर्षण ही है यहाँ भीति ।
वह सत्य एक, मत मात्र-भिन्न, कोई न यहाँ पर ऊँच नीच,
वह सहज सत्य चेतन सत्ता, सबके प्राणों को रही सींच ।
पर-धर्म-ग्रंथ, पर-धर्मी-जन पर, आक्रमण इसलिए उचित नहीं,
वह भेद-भाव की रीति-नीति प्रभु के पथ में कुछ ठीक नहीं,
अपमान धर्म-ग्रंथों, स्थानों का ईश-विरोधी कृत्य एक,
होकर सहिष्णु अतएव, रखो जागृत निर्मल मानस-विवेक ।
धर्मांध और असहिष्णु बने, मुस्लिम शासक जो अति चारी,
निन्दा कठोर की, उनकी जो जनता पर कर मारा मारी ।
कर रहे धर्म-परिवर्तन जो, बलपूर्वक करते मुसलमान,
थे प्राणनाथ मन में पीड़ित, सुन-देख अमित वे आख्यान ।
जो जला रहे वे वेद-शास्त्र, नारी अपहृत कर भंग मान,
लूटते-फूँकते ग्राम-खेत, करते हत्यायें जो अमान ।
तिलमिला हृदय में प्राणनाथ, मुस्लिम अतिचारों का विरोध,
संगठन-हेतु हिन्दू-जन के, लौटे देते अपना प्रबोध ।
निकले थे धर्म-प्रचार हेतु, गुरु-आज्ञा की प्रेरणा मान,
देखा पर, हिन्दू-जन पर जो अतिचार कर रहे मुसलमान ।
थे भक्ति भाव में रमे संत, पर निवृत्ति पथी एकांत नहीं,
जो गुफा बंद हो दृग-मूँदे, वे थे समाज के भक्त सही ।
वे चले खोजते हिन्दु-वीर, जो हिन्दु-संगठन खड़ा करें,
कर राष्ट्र-शक्ति का दृढ़-विधान, मुस्लिम-अतिचार विनष्ट करें ।
था सुना छत्रपति वीर शिवा दक्षिण में जो कर रहे कार्य,
उत्तर भारत में भी कोई, उठ चले शूर निज धर्म-धार्य ।
वे प्रथम आगरा-ओर गये, औरँगजेब को समझाने,
अतिचार बंद कर, जो सँभले, जन-हित का मन विवेक आने ।
समझाया सत्य एक जिसको ज्ञानीजन संत, पैगम्बरों ने,
है भाँति-भाँति से समझाया, क्या रक्खा है आडम्बर में ।
वे भिन्न धर्म हैं भिन्न मार्ग, ईश्वर में करते लीन सभी,
कर नष्ट ग्रंथ, पूजा-स्थल, करते ईश्वर-अपमान सभी ।
वह हिन्दु-मंदिरों के विनाश की, नीति त्याग दें आप-अभी,
सुविधायें उचित प्रजा को दें, जजिया समाप्त कर शीघ्र अभी ।
सब धर्मों के सम्मानपूर्ण, मुस्लिम संतों के वाक्य यही ।
बतलाए उसको, किन्तु हुआ, उसमें परिवर्तन तनिक नहीं ।

था उचित निवेदन प्रेमपूर्ण, जन-सेवा-हित जो भाव-भरा,
कट्टर मदांध अतिचारी पर, पर कुछ भी नहीं प्रभाव पड़ा ।
लौटे निराश हो प्राणनाथ, अति दुखित-हृदय, करते विचार,
हिन्दूराजा, सरदार स्वयं, कर रहे मुगल-शासन-प्रसार ।
औरंगजेब ने स्वयं किसी रण में लेकर के भाग कहीं,
अपने पौरुष, रण कौशल से, पाई थी कोई विजय नहीं ।
हिन्दू-प्रवीर ही उसके हित, लड़ते-कटते समरांगण में,
हिन्दू-असि से ही हिन्दु कंठ, कट रहे दुख अति इस क्षण में ।
इसलिए शीघ्र हिन्दू-नरेश जसवंत सिंह के पास गये,
पर मिले नहीं, लिख दिया पत्र मार्मिक, सेवा में इसीलिए-
"है जीवन-मरण-प्रश्न सन्मुख हिन्दू-जन के इस भारत में,
हिन्दू सरदारों के बल पर इस्लामी संकट भारत में
कर रहे आप से ही जन सब मुगली शासन-विस्तार यहाँ
यदि आप त्याग दें यह अकर्म, रह पाये पापी राज्य कहाँ?
अतएव त्याग मुस्लिम-सेवा, जागृत कर निज हिन्दू-विवेक,
निज-धर्म-देश की रक्षा का मिलकर उपाय कुछ करें नेक ।"
पर मृत्यु घटी जसवंत सिंह की, इसलिए पत्र का जो प्रभाव,
अज्ञात रहा, चल पड़े संत चित्तौड़ ओर, चिन्तित स्वभाव ।
राणा-प्रताप का वंशज था वह राजसिंह सिंहासन पर,
कर्त्तव्य बोध देने उसको, भारत-माता के संकट पर ।
संयोग एक, बस इसी समय, आक्रमण 'शाह' का, मरु-भू पर,
'प्रेरणादिया उठ करें आप, सामना शत्रुओं का डट कर ।
राणा-प्रताप के वंशज हैं, अनुरुप वही व्यवहार करें,
मुगलों का करके महानाश, निज धर्म-देश-संताप हरें ।
पर ध्यान दिया, उसने न रंच, स्वामी को ही आदेश दिया,
भावी संकट को भाँप, राज्य से जाने का निर्देश किया ।
फलतः निराश हो प्राणनाथ, बुंदेलखंड की ओर चले,
वन मध्य 'मऊ' के निकट कहीं, प्रभु-चिन्तन में ज्यों डूब चलें ।
इस ओर कभी तो आयेंगे, नर-वीर केशरी छत्रपाल,
तब तक जन-मन को कर सचेत, दूँ हिन्दू-प्राणों में उबाल ।
शुभ रही सांध्य-बेला प्रशांत, रवि थे अपने अस्तांचल पर,
मंगल-स्वर भरते विहगवृंद, जा रहे नीड़-आवासों पर ।
दो-चार भक्त सह, संत-सुधी, कुटिया के सम्मुख आसन पर,
बैठे सत्संगी-चर्चा थी, निज देश-धर्म के संकट पर ।
अध्यात्मिक वाणी प्राणनाथ की, प्राणों में धारण करते ।
हिन्दू-जीवन, निज धर्म-देश-चिन्ता से अनुप्राणित होते ।

सहसा आ ठहरा वही एक, अश्वारोही श्लथ-श्रम-प्रमाण,
यद्यपि तेजस्वी, स्वेद-स्नात, कटि में असि, कंधे धनुषबाण,
सुंदर-सुगठित सुपुष्ट तन-मन, गौरांग, ओजमय शूरवीर ।
उतरा हय से करता प्रणाम, जन-बोले- 'छत्ता महावीर'।

थे प्राणनाथ जी अति प्रसन्न, उठकर सहर्ष बैठा समीप,
आ रहे कहाँ से ! प्रेमपूर्ण था प्रश्न हुआ मुखरित पुनीत ।
'आया अहेर के हेतु, थक गया हूँ प्यासा अति महाराज,
शीतल जल सहित मिला तत्क्षण प्राणों का हितकर मधु-प्रसाद ।

सूर्यास्त हुआ सब गृहीभक्त, गृह ओर चले करते प्रणाम ।
रह गये अकेले प्राणनाथ जी, छत्रसाल लेते विराम ।
"हूँ यहाँ प्रतीक्षा-रत कबसे मिलने की इच्छा से विशेष,
आगरे मुगल-दरबार-मध्य थी श्रीमन् की चर्चा विशेष ।

सब चिन्तित शौर्य-पराक्रम से, क्या करें, चल रहा था विचार
सुन हर्षित मैं मन ही मन में, पर प्रकट नहीं, कुछ कर विचार ।
पर आज करो विश्राम, पुनः प्रातः होगी सारे बातें,
कटने वाली हे वीर ! तुम्हारी असि से ही दुःख की रातें ।

प्रातः निवृत्त हो स्नानादि से, स्वस्थ विराजे छत्रसाल,
करते प्रणाम, बोले "सुख से स्वामी जी! बीता निशा-काल ।
कोलाहलमय उस जीवन से, यह आज मधुरतम शांति मिली ।
दुर्भाग्य हुआ असि-कर जबसे, पूजा क्या? मात्र अशांति मिली ।

प्रभु-पूजा-रत सुशांत-जीवन, संयम मय जो अविकार रहा,
सेवा में मैं भी यहीं रहूँ, उठता-सा एक विचार रहा ।"
पर प्राणनाथ ने कहा- "वीर ! बलवान बाँह की छाँह लिए ।
ग्रंथों, धर्म-स्थल, निज-समाज-सेवा में कर संघर्ष रहे ।

इससे बढ़ पूजा क्या होगी ? दीनों-दलितों के त्राण, वीर !
उन राम-कृष्ण की भाँति, तुम्हारे बाण असुर-दल रहे चीर ।
यह वही धर्म-संस्थापन जिसमें प्रभु अवतार लिया करते,
जिसकी रक्षा-हित बार-बार धनु-चक्र-सुदर्शन हैं उठते ।"

"अति शांति-प्रवण ये शब्द प्रभो ! मैं तो साधारण व्यक्ति मात्र,
साधन अभाव, पर सप्रयत्न कुछ यों ही तो कर रहा मात्र ।"
"आगरे गया था, उस पापी औरंगजेब को समझाने,
रुक जायें अत्याचार घोर हिन्दू-जन पर, यदि वह माने

असहिष्णु रहा धर्मांध किन्तु, असफल वह एक प्रयास रहा ।
वह कट्टर सुन्नी असुर, निरर्थक मेरा सब आयास रहा ।"
"मैं पुनः संगठन हेतु मिला, उन मानी हिन्दु-नरेशों से,
जसवंत सिंह को पत्र लिखा, मिल राजसिंह-से भेकों से ।

परिणाम न निकला किन्तु तनिक, अवशेष आपसे ही आशा,"
"हूँ तुच्छ हिन्दु-सेवक स्वामी, मैं पूर्ण करूँगा अभिलाषा-
यह तो मेरा जीवन-व्रत ही, उन वीर पिता-निर्देशों से,
मैं फिर आया हूँ, प्रेरित उन नर वीर शिवा-निर्देशों से ।
अब आप श्रेष्ठतम संत मिले, आशीष आपका साथ लिए,
व्रत धर्म-देश की रक्षा का, पूजूँगा नव उत्साह लिए,
पर चिन्ता होती कभी-कभी, वह मुगल-सैन्य-साधन अपार,
लघु साधन ले तिर पाऊँगा, कैसे आसुर-सागर अपार ?"
"हे वीर श्रेष्ठ ! निश्चयी हृदय, उद्देश्य परम, ईश्वराशीष,
इन तीनों के सन्मुख खिलता, वह दिव्य विजय-श्री का शिरीष ।
क्यों भूल रहे, रावण-विरुद्ध, वानर-सेना को मिली विजय,
भगवान-राम-आशीष-फल-श्री, स्वयं खिली करती अभिनय ।
तीनों ही साधन मिले तुम्हें, फिर चिन्ता ही क्या हे प्रवीर !
तुम बढ़ो वीर ! संहार करो, असुरों का, जन की हरो पीर (शुक्रवार ४-३-९४)
संतोष उमड़ मुख पर छाया, गद्गद् स्वर बोले छत्रसाल-
"हिन्दूवीरों की कमी नहीं, पर महाराज ! अति कठिन काल,
संगठित नहीं हिन्दू नरेश, अपनी स्वराष्ट्र-रक्षण-सुनीति-
ले जुड़ें परस्पर, तो पल में, पापी शासन की मिटे भीति ।
निःशेष किन्तु उनके उर से, वह सामूहिक-चेतना-भाव ।
भूला उनको पौरुष स्वतेज जागृत स्वराष्ट्र की नहीं दाव ।
उनमें कितने ही दुष्ट-मूढ़, मुगलों के संगी, बँधे व्याज ।
पितु-श्री के शुचि उद्योगों में, वे ही थे बाधक महाराज ।"
"हे श्रेष्ठ युवक ! स्थिति ही यह, है किन्तु निराशा-जनक नहीं,
होते प्रकाश रविकर, छँटते, तमके बादल घनघोर सही ।
साधन-अभाव में भी देखो, बुंदेलखंड अधिकांश मुक्त-
कर लिया आपने, करके वह, मुगलों का सारा ताप ध्वस्त ।
साधारण क्या यह कार्य, हिन्दु में नव-जीवन-संचार हुआ,
विजयी भविष्य, उनकी नूतन, आशा में कर जयकार रहा ।
आशीष पूर्वजों का गद्गद्, ज्यों स्वर्ग-देश से उतर रहा,
दिनमान स्वयं ही किरणों से, जय-विजय तुम्हारी लेख रहा ।"
दो एक दिवस ठहरे छत्ता, स्वामी जी से वार्ता करते,
उनके प्रभाव को ग्रहण किया, गुरु मान लिया था ज्यों मन से ।
स्थिर कुछ छत्ता बोल उठे - "कितना महँगा है युद्ध कार्य ?
साधारण-संगर में भी व्यय, लाखों का होता अपरिहार्य ।
रण-सामग्री, सैनिक-वेतन, स्थायी भोज-व्यवस्था का,
मैं सोचा करता हो निदान, कैसे इस विकट समस्या का ?

स्थायी वृहद्-सैन्य-संग्रह, मेरे सन्मुख है कठिन प्रश्न ।
वह मुगल-सैन्य क्या ? किन्तु संकुचित रह जाता है मेरा मन ।"
सुन प्राण नाथ ने दृग मूँदे, कुछ पल हो करके ध्यान-मग्न।
प्रभु से जिज्ञासा करते ज्यों, निश्चल समाधि में हुए मौन ।

दृग-खोल शीघ्र, बोले प्रसन्न- 'दुश्चिंता का कुछ काम नहीं,
इस धर्म-यज्ञ की स्वयं दूर होंगी बाधा, संदेह नहीं ।
यह स्वयं रत्नगर्भा धरती, कर देगी धन की कमी दूर,
इसके अंतर में संचित हैं, हीरा-पन्ना के ढेर-ढेर ।

वह सब प्रभु ने है दिया तुम्हें, पन्ना-नगरी निज पाट धरो ।
छत्ता बोले- 'पर महाराज ! पन्ना में आश्रम थान करो ।
मिल गये आप मुझको, जैसे शिवराजा को गुरु रामदास ।
यदि आप रहेंगे साथ, दास अपने को समझेगा सनाथ ।'

सिर पर रखते निज वरदहस्त, स्वामी जीने आशीष दिया,
मुख से निकले ज्यों सिद्ध-शब्द,छत्ता का भाग्य सँवार दिया,

"छत्ता तेरे राज में धक-धक धरती होय,
जित-जित घोड़ा पग धरे, तित-तित पन्ना होय,
छत्ता तेरे राज्य में धक-धक धरती होय,
जित-जित घोड़ा मुख करे, तित-तित फत्ते होय ।"

गुरु-शिष्य हुए पन्ना निवसित, वह हटा गोंड का राजकाज,
हीरों-पन्नों के ढेर मिले, जुड़ गया सैन्य दल, साज-बाज ।
अध्यात्मिक गुरु ने पुनः किया, प्रवचनों से वह राज-काज,
छत्ता के शुभ-उद्देश्यों से परिचित अब हिन्दू-जन-समाज ।

जुड़ गये झुंड के झुंड वीर, कर में नंगी तलवार लिए,
निज धर्म-धरा की रक्षाहित, बलिधर्मी रण-व्यापार लिए ।
नूतन चेतना जगी उरमें, असि-व्रती 'प्रणामी' वीर हुए ।
निज राष्ट्र धर्म की सेवा में धनुधारी कर में तीर लिये ।

अपने तप को ले प्रखर तेज, गुरु युद्ध-भूमि में भी जाते,
निज धर्म-देश के वीरों में, उत्साह असीम बढ़ा आते ।
वे चंद्रगुप्त-चाणक्य रहे, वे शिवा वीर गुरु रामदास,
बुंदेलखंड गुरु-शिष्य जुड़े, वे छत्रसाल के प्राणनाथ ।

ले राजतिलक अब राज्य श्री से युक्त हुए नृप छत्रसाल,
साहसी-धरा के छत्रपाल, पहनते रहे जो विजय माल ।

(शनिवार ५-३६४)



११- मुगलांतक योद्धा

(१६-३-६४ प्रारम्भ)

रवि-प्रभा प्रकट होते ही वह तम-तोम स्वयं ढह जाता है।
जुगुनू-ताराओं का प्रकाश स्वयमेव नष्ट हो जाता है।
पौरुष की असि कर में आते, भगवान स्वयं आ जाते हैं,
अन्यायी अत्याचारों के गढ़, स्वयं टूटते जाते हैं,
पौरुष का जिसमें वेग प्रखर, जयमाल उसी की होती है,
अति का होता है अंत, सत्य की विजय सदा ही होती है।
आये हिन्दू-बुंदेल वीर, धर शाण नई करवालों में,
अश्वारोही रण-भल्ल तने, हिनहिना अश्व-रण-चालों में।
छत्ता के ध्वज के नीचे आ, हिन्दू-बल ने हुंकार भरी,
डगमगा गया मुगली शासन, थर-थर-थर वह दिल्ली-देहली।
ज्यों-ज्यों छत्ता की शक्ति बढ़ी, त्यों-त्यों प्रभाव-विस्तार बढ़ा,
विजयों की सरणी गुँथी, शौर्य-गाथाओं का जयकार बढ़ा,
आसुर मुगली सत्ता सिमटी, अत्याचारों का राज मिटा,
इस धर्म-धरा के मस्तक से, पापी संकट का भार मिटा।
जन-मन के नायक छत्ता की मुगलान्तक गतियाँ तेज हुई,
पापी जन के आसुरी ताप की ज्वालायें निस्तेज हुई।
संपूर्ण सजग बुंदेलखण्ड छत्ता की शास्ति बखान रहा।
संरक्षक शासक धीर-वीर, जन-मन उनको ही मान रहा,
कुछ शेष रहे जो यंत्र-तंत्र, मुगली शासक या फौजदार,
बस कृपामात्र से छत्ता की, निज कुशल मानते हृदय-हार,
जितने भी छोटे-बड़े रहे, राजे या जो जागीरदार।
सब चौथ चुकाने लगे उन्हें, गुपचुप कुछ मुगली फौजदार।
चिंतित विशेष औरंगजेब, छत्ता की बढ़ती शक्ति देख,
सब भाँति विचार विशेष किया, निर्धार रहा बस यही शेष -
"केवल इकले ही फौजदार से, कार्य नहीं बन पायेगा,
आयोजन अन्य विशद करने से ही अब कुछ हो पाएगा।
सब हार भगे, भेजा अब तक, जितने भी योद्धा फौजदार।
इसलिए उचित यह संयुति में भेजूँगा अब दो-तीन-चार।
इलाहाबाद के हिम्मत खाँ, सूबा ग्वालियर अमानुल्ला,
इन्दरखी के पहाड़ सिंह तीनों को शाही फरमान मिला,
सज्जित कर अपनी सेनायें, छत्ता पर जा आक्रमण करो,
जैसे भी हो इस बार शीघ्र सहभ्राता उसका दमन करो।

तीनों सेनाएं साथ चलीं, छत्ता ने उधर विचार किया,
भिड़ना अनुचित इस समय, अस्तु तत्काल संधि-प्रस्ताव किया।
औरंगजेब था परेशान, तत्काल संधि को मान लिया ।
छत्ता-विरुद्ध सेनाओं को, ले जाना भी अब मना किया (१६-३-९४)

था पीड़ित उधर मराठों से, रजपूतों ने सिर उठा दिया,
बुंदेलखंड की पीड़ा ने था, अब तक उसको हिला दिया ।
पंजाबी सिक्ख-कृपाणों से मुगलों को था संत्रास घोर,
थे चतुर्दिशा में हिन्दुवीर मुगली सत्ता कर रहे धूर ।

निश्चित संधि से औरँग अब, जितने थानों के फौजदार,
अब शाँति-चैन के दिन आये, सब करते थे मन में विचार,
था ध्यान बँट गया उन सबका, इसलिए नहीं थे सावधान,
थे शिथिल सैन्य-दल-व्यूह हुए, खाते पीते फिरते जवान ।

अवसर उपयुक्त मान छत्ता ने, कालपी क्षेत्र को छीन लिया,
कर पुनर्गठित अपनी सेना, मुगली-शासक सब भगा दिया ।
औरँग ने पाया समाचार, उसने फिर से फरमान लिखा,
छत्ता को शीघ्र मिटाने का, जिसमें संपूर्ण विधान लिखा ।

रण-दूल्हा सिरौंज का फौजदार, हिफजुल्ला खाँ नरवर वाले,
इंदरखी के पहाड़ सिंह भी, सम्मिलित हुए सेनायें ले ।
दिल्ली दरबारी बाइस वजीर, सरदार आठ, सह-सैन्य मिले,
ले तीस सहस पैदल तोपें, अश्वारोही दल दौड़ चले ।

छत्ता अब मऊ समीप बैठ, आक्रमण रोक, कुछ शांत हुए,
मुगलों को देते समाधान, अपनी रणनीति विचार हिए ।
मुगली नायक घबराते थे, छत्ता के सन्मुख जाने में,
उनकी चुप से निज कुशल मान, ठहरे सब निज स्थानों में ।

औरँग को सूचित किया, व्यर्थ बुंदेलखंड में अब जाना,
छत्ता में साहस नहीं रहा, निज संधि-पक्ष उसने माना । (१७-३-९४)
सागर के निकट गढ़ा कोटा की दिशा चला फिर रण-दूल्हा,
योजना रही यों पन्ना पर आक्रमण रहेगा अनुकूला।

छत्ता को उसका सूत्र मिला, बढ़ दुर्ग गढ़ा-कोटा छीना,
मुगली सैनिक सब मार दिए, बलदिवान डटे लेकर सेना,
झंडा तब भी मुगली ही था दृढ़ दुर्ग सिरे पर फहर रहा,
छत्ता का सैनिक दल आकर शाहगढ़ पहाड़ी पर ठहरा ।

ज्यों ही आई उसके समीप रण दूल्हा की मुगली सेना,
गोली-तीरों की वर्षा से हो गई दशा उसकी दीना ।
भागी बिचलित हो। इधर-उधर, कितने सैनिक रण खेत रहे ।
आकस्मिक भीषण मार पड़ी, भौचक से अस्तु अचेत रहे ।

पश्चात् छत्र ने व्यूह हटा, पथ गढ़ कोटा का छोड़ दिया,
अविरोध वहाँ तक जाने का मुगली सेना को मार्ग दिया,
थी मुगल-पताका फहर रही, दृढ़-दुर्ग गढ़ा कोटा ऊपर,
रण-दूल्ला अस्तु जमा मोर्चा, जम गया दुर्ग के ही बाहर,
विश्वास उसे था छत्ता का आक्रमण बाहरी ही होगा,
पर स्वयं फँस गया व्यूह मध्य, जिसका उसने कटु फल भोगा।
आ गयी छत्र-सेना सन्मुख, घिर गई पठानों की सेना,
ठन गया निशा में युद्ध, मार आगे पीछे से, क्या कहना ?
गोलियाँ तीर-वर्षा सन्मुख, पीछे वैसे ही बल दिवान,
रणदुल्ला था अनभिज्ञ, पड़ गये संकट में अतएव प्राण।
जूझे सैनिक, दस सेनापति, तोपों का कुछ भी वश न चला,
आगे-पीछे थी मार विकट, सागर पथपर वह भाग चला।
डालता जहाँ पर भी पड़ाव, छत्ता करते आक्रमण वहाँ,
कर तोबा आगे भाग रहा, प्राणों के लाले पड़े जहाँ।
अब हनूटेक से पीछा कर छत्ता आ पहुंचे ललितपूर,
नर वर दिशि भागी मुगल सैन्य, पीछा करते बुंदेलशूर।
नरवर होकर जा रहा सैन्य दल, सँग में शाही कोष लिए,
जब सुना छत्र ने, लूट लिया, रक्षक मुगली दल भाग गये।
रण दूला भगा ग्वालियर को, सब क्षेत्र छत्र ने छार किया,
रतनागर, ओडेर, हरथौना, धामोनी नगर उजाड़ दिया,
औरंगजेब को पता चला, तो क्रोध और दुख में झुलसा,
रणदूला की अक्षमता पर, कायरता पर गरजा-बरसा।
देकर उसको फिर अर्थदंड, फिर लड़ने का आदेश दिया,
रुमी सेनापति सहित तुर्क सेना उसके कर साथ दिया,
रण दुल्ला धामौनी ओर फिरा, ले बुझा-बुझा-सामन भारी,
छत्ता गढ़कोटा में छाये, कर रहे व्यवस्थायें सारी,
कुछ पता चला रणदुल्ला को छत्ता अब पन्ना ओर गए,
सागर, गढ़ कोटा विजित करूँ, उसने मन में संकल्प किए।
छत्ता को भी यह ज्ञात हुआ- 'रण दुल्ला वापस चढ़ आया।
सागर, गढ़कोटा-विजय-हेतु, उसने दृढ़ निश्चय अपनाया।
यदि सफल हुआ तो निश्चित ही, बाजी अपनी खो जाएगी।
अपने स्वराज्य-संकल्पन को यह चोट बड़ी हो जाएगी।
सुविचारित अस्तु बंसिया में, अपनी दृढ़ नाके-बंदी की।
कुछ घंटों में ही रण-दुल्ला की सेनायें भी आ धमकीं।
थी शिथिल-श्रांत सारी सेना, बाहर ही उसका शिविर पड़ा,
पर अकस्मात बुंदेला-दल, ज्यों व्याघ्र बुभुक्षित टूट पड़ा।

अब अस्त-व्यस्त हो गये तुर्क, असफल से सभी प्रयास हुए,
हो गई हानि जो सेना की, सारे हौसले समाप्त हुए ।
कुछ क्षण में ही फिर छत्ता ने, सेना को पीछे हटा लिया,
शाही-सेना के पृष्ठ भूमि पर फिर तीक्षण आक्रमण किया ।

सेनापति जिसका गनीबेग, बारुद तोप-दल-संचालक ।
गोली वर्षा कर घमासान, बढ़ चला तुपुक दल ले घालक ।
कर एक बार गोली वर्षा, हट चलीं बुंदेली सेनाएं,
दागती हवा मे बंदूके, दौड़ी पीछे अरि-सेनाएं ।

पर लगी अचानक आग, ध्वस्त बारुद-कोष था पलभर में,
तोपें-बंदूकें शांत हुई, भर गया धुवाँ सब नभ-थल में ।
भागे तुर्कीदल तितर-बितर बुंदेलों ने मारा खदेड़,
मर गया कहीं जा गनी बेग, बुंदेले-हाथों का अहेर ।

रण-कौशल था यह छत्ता का, व्यापक जय की घोषणा हुई ।
रण दुल्ला का था पता नहीं, निष्फल ही जो गवेषणा हुई ।
तुर्की-सेना, रण-दुल्ला खाँ, कर रूमी सेनापति परास्त,
जिगनी में आर्य छत्रसाल, ले अपनी जय श्री, कीर्ति-व्याप्त ।

जागीरदार सिंह मिले स्वयं भगवान कुअँरि की डोली ले,
शुभ-शकुन देखकर व्याह दिया, ज्यों विजयश्री वरमाला ले ।

ओरछा नरेश इंद्रमणि को दंड

ओरछा-नृपति सुजान सिंह, छत्ता को देता मान रहा,
उसके निधनोपरांत, भ्रांत इंद्रमणि पाट-आसीन हुआ ।
जो वचन प्रथम सुजान सिंह के, ठुकराया व्यर्थ मान करके,
विश्वासघात कर चला, स्वयं ही मुगल सहायक हो करके,

सुन छत्रसाल ने समाचार, ओरछा नृपति पर क्रोध किया,
नियमोल्लंघन के दंड हेतु, निज-सैन्य वीर सन्नद्ध किया ।
ओरछा-समीपी ग्राम-नगर, फिर जीत राज्य में मिला लिया,
जीरोन, गरौंट, जतारा के केंद्रों को भी आधीन किया ।

अब जमी बेतवा के तट पर, छत्ता की वह विजयिनि सेना,
भयभीत इंद्रमणि शरण हुआ, पड़ गया उसे लेना-देना ।
कर दिया क्षमा, पर स्थायी, हो गयी घृणा उनकी उससे,
निज पुत्रों-मित्रों, कर्मचारियों को भी समझाया फिर से ।

"विश्वास कभी भी करें नहीं, उन नीच ओरछा वालों का
हो सावधान, नित ध्यान रखें, उनकी उन कपट कुचालों का ।
विश्वासघात के लिए इंद्रमणि को छत्ता ने दंड दिया,
ओरछा राज्य के विजित क्षेत्र, उसको फिर वापस नहीं किया ।

निज कृत्यों का स्मरण लिए, अपमानित हो बुंदेलों से
मर गया इंद्रमणि शीघ्र स्वयं, भोगता पाप दुष्कर्मों के (२८-३-६४)

दिल्ली और तहवर खाँ-

यो शक्तिपुत्र छत्ता करते जब मुगल-तुर्क संहार घोर,
बुंदेलखंड की सत्ता को अपनाते पौरुष से अथोर ।
उस समय प्रबल दिल्ली साही में पनपी थी गृह-कलह जोर ।
जिससे पीड़ित औरंगजेब के मन में चिंताजगी घोर,
शहजादा अकबर हुआ वहीं, विद्रोही था अब औरंग का ।
वह दुर्गादास राठौर वीर हो गया सहायक था उसका ।
अतएव दबाने को उसको, औरंग था दक्षिण-ओर चला,
नर्बदा-समीप उसे रणदुल्ला की हारों का संदेश मिला ।
तुर्कों को कर देगा परास्त छत्ता, सोचा था कभी नहीं,
चिंता अब उसे सवार हुई, दिल्ली न उधर लुट जाय कहीं ?
हिन्दू-जन-मन था जाग उठा, रजपूताने में संग्राम छिड़ा,
तहवर खाँ उसका सेनानी, दल-बल भारी ले वहाँ भिड़ा ।
वह युक्त-नीति में कुशल बड़ा था राजभक्त, अति युद्धवीर ।
छत्ता-विरुद्ध औरंगजेब ने भेजा दे सेना गँभीर,
तहवर ने निज योजना रची, छत्ता विरुद्ध खुल युद्ध घोर-
वह नहीं लड़ेगा, पकड़ेगा, उसको औचक ही किसी ठौर,
इस समय मऊ से ले बरात, छत्ता रचते अपना विवाह,
खँडवा में थीं भाँवर पड़तीं, तहवर ने घेरा भर उमाह ।
भाँवर ज्यों ही पड़ चुकीं, छत्र ने निज सेना का एक भाग,
सन्मुख लड़ने भेजा, निकले, सकुशल ले सेना एक भाग,
आ पृष्ठ भाग में अरि दल के, कर चले शीघ्र भीषण प्रहार,
सन्मुख थे लड़ते बल दिवान, झेलता शत्रु था उभय वार ।
'खाँ' की सेना का पृष्ठ भाग, निर्बल करके यों छत्रशाल,
धौरी-धामौनी-ग्राम लूट, आये विंध्या घाटी विशाल ।
विंध्यादि घाटियों में निवसित, वनजाति हो उठीं अति प्रसन्न ।
स्वागत कर उनका तन-मन से, माना निजको सब भाँति धन्य ।
चिंतामन शूर प्रमुख शासक, लोधी-समाज का हो प्रसन्न,
लाया महलों में स्वागत कर, था अथिति वीर अपना अनन्य ।
लोधी समाज का राज रहा, कटनी-जबलपुर-सागर तक ।
देते उनको निज अभयदान, बढ़ गये छत्र कालिंजर तक ।
घेरा गढ़ को अति कौशल से, बाहर से करके द्वार बंद,
दृढ़ राम नगर में व्यूह रचा, अरि-बध करने को हो प्रचंड ।
तहवर खाँ को जब पता चला, वह पृष्ठ भाग पर जो कराल,
आक्रमण कर रहा था औचक, वह था बुंदेला छत्रसाल ।
अतएव मोड़ कर शक्ति सभी, छत्ता के पीछे दौड़ चला,
कुछ अंतर से निज सैन्य सहित, बल दिवान वीर भी उधर बढ़ा,

पीछा करता अब तहवर खाँ, कालिंजर गढ़ की ओर चला,
छत्ता के दलने रोक दिया, ज्यों राम नगर में पाँव धरा।
पीछे थी मार-काट करती, बलदिवान की सेना भीषण,
जा डटी वीरगढ़ के समीप, खाँ के आगे पीछे था रण,
अवरुद्ध दुर्ग का मार्ग रहा, आशा सहाय की रही नहीं,
छत्ता की मार करारी थी, भगने की सूझी राह नहीं।
था मात्र वीरगढ़ घाटी का, उन्मुक्त मार्ग निष्क्रमण हेतु,
योजना-बद्ध हो बल दिवान, थे डेढ़ कोस पर छिपे किन्तु,
थी यही प्रतीक्षा 'खान' टेकरी पर आकर आक्रमण करे,
नीचे से उसके पीछे हम, फिर पृष्ठ भाग में मार करे।
वीरगढ़ पहुँच, तहवर खाँ को, ज्यों लगा, बुँदेले सब भय से।
हैं भाग रहे, पीछे दौड़ा इसलिए सैन्य ले हड़बड़ से।
वनमध्य छिपा निज सैन्य वीर, छत्ता चढ़ उन्नत शैल-श्रृंग,
कर रहे निरीक्षण शत्रु मोर्चे का होकर के ध्यान-मग्न।
अवलोक उन्हें चढ़ धायेगा तहवर खाँ, उनको ज्ञात रहा,
कुछ ही छण में सब घटित हुआ, जैसा उनका अनुमान रहा,
सूचना मिली 'खाँ' ने दल को, गिरि-चढ़ने का आदेश दिया,
अब भाग सकेगा नहीं छत्र, पकड़ूँगा शीघ्र विचार किया,
थी इष्ट मार्ग पर मुगल सैन्य, बलदाऊ ने यह देख लिया,
तत्काल छत्र की रक्षा में; टुकड़ी सेना की भेज दिया,
दूसरा सैन्य दल ले आगे, मुगली दल पर आक्रमण किया,
प्राणों की बाजी लगा घोर, वीरों ने बढ़ संग्राम किया,
हरि कृष्ण मिश्र, नंदन छीपी, असि कौशल के वे कृपाराम,
उत्सर्ग कर गये जीवन को, निज मातृमही को कर प्रणाम।
बलिदान हो गया सफल, भगे सब मुगल तीव्र संघातों से,
आगे सतर्क थी छत्र सैन्य, जो चबागई अरि, दाँतों से।
बुंदेल सैन्य दल मिले सभी, आगे हमीरपुर पास कहीं।
मुगली सेना करके विनष्ट, फिर गई मऊ की ओर अनी,
निरुपाय तहव्वर खान शीघ्र, दिल्ली को तत्क्षण भाग गया।
सिर लिए पराजय-बोझ, दुखी, बुंदेल खण्ड को त्याग गया।
(गुरुवार ,३१-३-६४)

कालिंजर विजय-

कुछ सैन्य वीर ले छत्रसाल, सीधे खँडवा बाजने गये।
नव विवाहिता की डोली ले, तत्काल मऊ को लौट गये।
फिर एक दिवस कर सैन्य गठित, विजयादशमी के दिवस वीर,
निज अस्त्र-शस्त्र तन-धारण कर, कालिंजर गढ़ पर घिरे धीर।

अवरुद्ध रही मुगली सेना, पावस भर गढ़ कालिंजर में
विश्वास यही था उसे, दुर्ग है घिरा छत्र की सेना में ।
इसलिए पड़ रहे, रसदभोग करते गढ़ भीतर चार मास,
था करन इलाही किलेदार, कुछ हुआ न उसको सत्यभास ।
वर्षा बीती तो गढ़ बाहर बुंदेलों का आभास मिला,
अब परेशान हो गया, रसद की चिन्ता का परिताप मिला ।
कालिंजर गढ़ घेरा डाले, बुंदेली सेना के प्रधान ।
दुर्जेय किले को घेर खड़े, दुर्जेय बली वे बल दिवान ।
पहले भी जब-तब होती थी, गढ़ से गोली बारी जारी,
पर गढ़-घेरा कर ज्ञात, हुई तीव्रतर अधिक गोलाबारी ।
जूझे यद्यपि बुंदेलवीर, टूटा न किन्तु गढ़ का घेरा,
थी रसद चुकी, गढ़ की भूखी सेना विचलित, संकट घेरा ।
बाहर से था अवरुद्ध मार्ग, अट्ठारह दिन से युद्ध चला,
पर रंचन पीछे छत्रसाल की सेना का था पग विचला,
मुख खोले तोपें, धायँ-धायँ, धौंसा 'धम-धम' ध्वनि गर्जमान ।
अररर् अररर गोले गिरते, सन-सना रहे थे तीक्ष्ण बाण ।
दनदना रही बंदूक घनी, गोली वर्षा थी धुवाँधार ।
मृत-आहत लेते समर भूमि व्यापक कराह क्रंदन अपार ।
घेरे यद्यपि, अश्वारोही, झेलते शत्रु के अग्निबाण ।
भिड़ रहे सुभट, रण-धीर वीर, निजलिए हथेली अमर प्राण ।
खिंच रही मेदिनी लोहू से, योद्धा-प्रमत्त रणरंग-ठान ।
कर में ले असि भल्ल सजे, चमचका रहे भाले-कृपाण ।
किस ओर बढ़े योद्धा आगे, किस ओर पिछड़ने लगे मान ।
किस ओर सहायक सैन्य बढ़े, सकेत कर रहे रण-निशान ।
बुर्जों कर तोपें गरज रहीं, तोपची दागते दे निशान,
पर कोटों पर सैनिक छाये , बेधते लक्ष्य बंदूक बाण ।
प्रत्येक द्वार पर डटी वीर, बुंदेलों की सज्जित सेना ।
जो द्वार खुला, धँस चले वीर, कर मार काट था गढ़ लेना ।
गढ़ भीतर धँसकर वीर बढ़े, बुरजों पर भगवद्ध्वज फहरा ।
जोथे महत्व के बिन्दु, लग गया छत्ता का सैनिक पहरा ।
अंततः मुगल सेना निकली, खुल गया दुर्ग का मुख्य द्वार,
झपटी अरि-घेरा-भंजन हित, मच गया युद्ध भीषण अपार ।
भड़की ढालें, असि उठीं-गिरीं, झुक भल्ल बिंधे, हर चले प्राण ।
ललकारें- हुँकारें गूँजी, हो चला युद्ध अति घमासान ।
हत हुए अमित बुंदेल वीर, सत्ताइस नायक व्रणगहरा,
घोषणा विजय की हुई किन्तु, गढ़ पर केसरिया-ध्वज फहरा ।

यह देख मुगल-सेना-बल का सम्पूर्ण मनोबल टूट गया ।
गढ़ भीतर से तब तक पीछे, बुंदेलों का आक्रमण हुआ,
वह इतनी भीषण मार रही, हथियार सभी ने डाल दिया,
अपनी रक्षा की चिंता में, लड़ने की इच्छा त्याग दिया ।

निरुपाय खड़े, निज प्राणों की, भिक्षा यों सब मांगने लगे ।
कालिंजर था अब छत्ता का, गढ़ त्याग मुगल भागने लगे ।
दुर्गपति बना मानधाता चौबे को सेना-सामान दिया,
ले शेष सैन्य पन्ना पथ से, फिर मऊ ओर प्रस्थान किया ।

अब महाराज थे छत्रसाल, जनता उनका वंदन करती,
झुकते आ सन्मुख रजवाड़े, नम्रता, चरण-भेटें धरती ।
फिर इसी वर्ष भाइयों सहित, छत्ता ने रखते गर्म-हाट,
उस मुगल-अधिकृत एरचक्षेत्र की, कर ली भीषण लूट-पाट ।

जो मुगल भक्त थे मुसलमान, भागे गाँवों को छोड़-छोड़ ।
पनवारी-धामौनी लूटा, सदरुद्दीनी-सेना खदेड़ ।
पथ छेक खड़ा सन्मुख आकर, बेतवा समीप जलालखान ।
हो गया शीघ्र बंदी, सेना भागी तत्क्षण ग्वालियर थान ।

अब छत्ता बाँदा ओर मुड़े, ले मंगल-कलश नागरिक जन ।
शुचि अक्षत-चंदन, पुष्पहार ले आये करने अभिनन्दन ।
संग्रह करके धनराशि बड़ी, दी भेंट सभी ने छत्ता को,
दी पूजा सबने स्नेह भरी यों हिन्दू वीर-महत्ता को ।

कालपी पहुँच कर छत्ता ने, पकड़ा फिर मुगली थानदार,
पीटा भरपूर, खदेड़ दिया, लूटा जितना भी धनागार ।
धन बाँट दिया सब सेना में, पर सैनिक जनने स्वेच्छा से,
कुछ किया सैन्य-व्यय-कोष जमा, अपनी ही परम शुभेच्छा से ।

पश्चात् ओरछा ओर फिरे, अब जिसका राजा था बालक,
माँ अमर कुँवरि संरक्षिका रही, मंत्रीगण सत्ता-संचालक ।
वे मिले हुए थे मुगलों से, इसलिए लूट का निश्चय कर ।
आ रहे उधर जब छत्ता थे, सरिता-धसान के ही तट पर,

माँ लिए पुत्र को खड़ी मिली, अक्षत-सुमनों का लिए हार,
स्वेच्छया धसान पूर्वी भाग, सौंपा छत्ता को कर विचार ।
आये ओरछा नगर छत्ता, मंत्रीगण आ भयभीत जुड़े ।
फिर क्षमा माँग, रानी को ही प्रतिनिधि माना, कर-बद्ध खड़े ।

पुनः तहव्वर खाँ-

खा करके मार करारी जो दिल्ली को भागा तहवर खाँ ।
औरंगजेब ने फिर भेजा कर सूबेदार ग्वालियर का ।
सुनते छत्ता की भौंह चढ़ी, विजयी नायक ग्वालियर चला,
यह ज्ञात हुआ जब उसको तो, भयभीत छत्र से स्वयं मिला ।

ओरछा-समीप स्वयं आकर, तहवर ने बीस हजार दिया,
ग्वालियर-प्रजा-रक्षार्थ विनत उसने उनसे प्रार्थना किया ।
फिर बीस हजार और देकर उसने पूरी कर हानि दिया,
इतनी ही वार्षिक चौथ चुकाने का भी उसने वचन दिया ।
औरँग को धूर्त मुनव्वर ने तब भी गुप-चुप लिख पत्र दिया,
आंतरिक - व्यवस्था निजी सुदृढ़ करने पर उसने ध्यान दिया
इस बीच भेलसा किलेदार से करते चौथ उगाही को,
छत्ता ने गढ़ को छीन लिया, अंगुष्ठ दिखाते शाही को।
इन पराजयों से बढ़ी अमित, औरंगजेब की हैरानी ।
बुंदेली भू पर हुआ कठिन अब मुगलों का दाना-पानी । (शुक्रवार १-४-६४)
अनवरत लूट की छत्ता की, सुदृढ़ी-करण की सत्ता की,
ले उभय कार्य दिल्ली पहुँचे, तहवर खाँ, किलेदार काल्पी,
छत्ता के प्रबल आक्रमण का, वृत्तांत सुनाया औरँग को,
अपनी कायरता को ढकते, फिर यह भी बतलाया उसको,
लूटता कोष जो शाही का, इसलिए चौथ देते उसको ।
सुनते यह आग बबूला हो, फटकार लगाई दोनों को,
अनवर खाँ एक पठान रहा, दी फिर उसको भारी सेना,
बारह हजार अश्वारोही, हाथी ऊँटों का क्या कहना ?
पैदल सेना कितने हजार, धनकोष, रसद-बारूद सभी ।
भेजा तत्क्षण छत्ता-विरुद्ध, करने को उसको नष्ट अभी ।
भेलसा जीत कर लौट रहे, छत्ता ने पाया समाचार,
आ रही शीघ्र आक्रमण हेतु, मुगली सेना, दल-बल अपार ।
बुंदेले वीर प्रहर्षित हो, बोले औरँग ने इसी बार,
है पूर्ण किया मन चाही को, असि-प्यास बुझेगी इसी बार ।
कर शीघ्र विभाजित निज सेना, छत्ता ने गुल्मों में समान ।
शैली-विशेष से लड़ने का, कर लिया शीघ्र निज अनुष्ठान ।
सेना का अपना गुल्म एक, आवेग पूर्ण करता प्रहार,
भागता अन्यदिशि मुड़ पीछे, पीछा करते मुगली सवार ।
पश्चात् अन्य आता, करता अपना जो भीषणतम प्रहार ।
वैसे ही गिरि-वन को जाता, पीछे लगते मुगली सवार ।
इस भाँति पहुँचती गई सभी, मुगलीसेना उस स्थल पर,
थे जहाँ चतुर्दिक गिरि ऊँचे, जिनमें बुंदेले सैनिक वर ।
योजना-बद्ध रण-शूरों ने, आक्रमण कर दिया मुगलों पर,
हक्के-बक्के रह गये फँसे, पड़ रही चतुर्दिक मार प्रखर ।
अनवर खाँ बंदी हुआ, मांगता भिक्षा अपने प्राणों की,
दो लाख दंड दे, शपथ लिया, फिर नहीं लौट कर आने की ।

मुगलाधीन बुंदेल खंड के भाग रहे जो शेष अभी,
उनसे भी चौथ चुकाने की, कर दिया व्यवस्था उचित सभी।
औरँग ने पाया समाचार, देखता दूत को आँख फाड़,
रह गया चकित-सा अनवर को अपमानित करता बार-बार।
कर सरदारी पद से वंचित, मनसबदारों में बिठा दिया।
क्या करें न कुछ भी सोच सका, छत्ता ने मन को रुला दिया।
छत्ता अब देश-प्रसिद्ध हुए, उनकी विजयों का कीर्तिमान।
हिन्दू जन-मन में फहर रहा, केसरिया भारत-ध्वज महान।

छत्रपति शिवाजी का स्वर्गारोहण- शनिवार २-४-९४)

पर इसी समय छत्रपति शिवाजी का आकस्मिक स्वर्गवास,
हो गया, सुना जब छत्ता ने, मन हुआ वीर का अति उदास।
छत्रपति शिवाजी के रहते, अरि-शक्ति विभाजित सदा रही,
तब छत्रसाल को भी अपनी चिन्ता विशेष कुछ नहीं रही।
शिव-विगत हुए, छत्ता ने स्थिति पर गंभीर विचार किया,
हो करके अधिक सतर्क, मुगल सत्ता-विरोध निर्धार लिया,
महाराज शिवा ने पौरुष से, हिन्दू-स्वराज्य-निर्माण किया,
बलशाली असुर मुगलसत्ता का सफल सामना सदा किया,
रक्षार्थ समुद्री दस्यु आदि से नौबेड़ा तैयार किया,
उस परम वीर ने सर्वप्रथम, जल दुर्गो का निर्माण किया,
अपनी नौसेना प्रबल बना, कर विदेशियों को भी परास्त,
भारत-गौरव अभिमंडित कर, कर गये सबल निज महाराष्ट्र।
निधनोपरांत भी उनके वह हो सका शांत महाराष्ट्र नहीं,
प्रेरित उनसे ही मैंने, मुगलों से छीनी बुंदेल मही।
हिन्दू-भारत की रक्षा में जीवन भर करते सत्प्रयास,
सच्ची श्रद्धांजलि वीर शिवा की होगी - 'करना मुगल नाश।'
जागी थी राजस्थान मध्य, बस इसी समय विद्रोह-ज्वाल।
वह दुर्गादास राठवर भी बन गया मुगल-अरि था कराल।
शहजादा अकबर को उसने, समझा स्वपक्ष में लिया फोड़,
फिर मिला छत्रपति शम्भा से, संबंध मित्रवत् लिया जोड़,
जब दिया सूचना अकस्मात्, औरंग को जहाँबहादुर ने।
मुँह बाये था वह खड़ा रहा, किंकर्त्तव्यमूढ़-सा उस पल में,
बागी हो गया पुत्र अपना, राठौर, मराठे सहयोगी,
निर्णय करना था कठिन उसे, अपने दुष्कर्मों का भोगी।
छत्ता उसके सिर दर्द बड़े, योजना मिटाने की उनको,
थीं ध्वस्त हुई अब तक जितनी, हारे योद्धा लौटे घर को।
कम थी न कभी पीड़ा इसकी, चिंता मन में इतनी कराल,
आकस्मिक शिव जैसा छत्ता, लूटे न कहीं दिल्ली विशाल।

अतएव बुला अमीर-उमरा, सरदारों से होकर विनीत,
भीरुता-निराशापूर्ण निवेदन में कराहता ज्यों अतीत-
"क्या शेष न मुगलों में बोलो, कोई माई का लाल यहाँ,
डाकू छत्ता को दबा सके, है कोई मनसबदार यहाँ ?
मेरे लश्कर में भरे याकि, केवल हैं नमक हराम सभी,
जो जाता, मुँह लटका आता, रखते कुरान की आन कभी।
सब बुज़दिल कायर ही हैं क्या ? कोई माई का लाल नहीं,
जो जिंदा या मुर्दा छत्ता को, ले आयें तत्काल यहीं,
विद्रोह दबाने वाले उस, योद्धा को अपने हाथों से,
मनसब ऊँची पदवी दूँगा, अधिकार बड़ा इन हाथों से।
परिणाम न कोई किन्तु रहा, औरंगजेब के कथनों का,
व्यापक नैराश्य घुमड़ छाया, जैसे समाज में वचनों का।
छत्ता से करना युद्ध मात्र था स्वयं मृत्यु का आवाहन,
मनसब पदवी के लिए व्यर्थ ही था प्राणों का उत्सर्जन।
अतएव मौन देखते रहें, बैठे मुख एक दूसरे का,
अब समझ गया औरंगजेब उथलापन मुगली सत्ता का,
चाहे वह जितनी पीड़ा दे, यातना कठिनतम मनमानी,
बदले कितने ही नियम, किन्तु हिन्दू-बल था अदम्य मानी।
नरसिंह शिवाजी, छत्रसाल, हिन्दू-जन के प्रतिनिधि महान्,
इस्लामी सत्ता ध्वस्त हुई, उठते जिनकी तीक्ष्ण कृपाण।
जिसका उज्ज्वल चरित्र, जन-बल, मानवता के हित में अमान।
उसके सन्मुख कब टिक सकता, अतिचारी धन-बल अपरिमाण।
उन गुरुवार तेग-बहादुर का, बलिदान आज मुख फाड़ रहा,
जलते लोहे के तवा बैठ मतिदास हिन्दु-ललकार रहा।
भय-प्रलोभनों से, निर्विकार, अविचल जिनकी आत्मा सुधीर,
निज देश-धर्म की रक्षा-हित, बलि होते उड़-उड़ हिन्दुवीर।
जागृत हिन्दू-जन-बल सन्मुख, इस्लामी सत्ता-होश उड़े,
विचलित दरबारी चुप्पी से, औरंगजेब के भाव गिरे।
उस स्थिति से उद्धार हेतु, उसने जितने उपक्रम किए,
असफलता ही परिणाम रही, भ्रम मन के सारे टूट गये।
होकर उदास अति बोल उठा, तो अब मैं यह स्वीकार करूं।
अब शेष न मुसलमान जिसको, छत्ता के सन्मुख भेज सकूं।
जो देख रहा, सब नमक हरामी चेहरे ही ज्यों दीख रहे,
छत्ता के सन्मुख सभी, प्राण की भिक्षा के आलेख रहे।
सरदारों-उमरावों के प्रति निज आँख डालकर देख रहा,
कोई न किन्तु कुछ हिलाडुला मन जैसे सबका टूट रहा।

मिर्जा सदरुद्दीन-

मिर्जा सदरुद्दीन उठा, इस बीच एक जो ईरानी,
कुर्निस करते आगे आया, फड़का अपनी मूँछें श्वानी,
छत्ता को बंदी कर लाने का, उसने सिर पर भार लिया,
औरंगजबे ने हो प्रसन्न उसका अपूर्व सम्मान किया ।
मुँह माँगी सेना दे उसको, धामौनी-सूबेदार बना,
क्षेत्रीय राजधानी में मिर्जा आकर सेना-सहित जमा ।
था शूरवीर, अति नीति-निपुण, उसकी अपनी रणनीति रही,
छत्ता को बंदी करने की छल की फिर नूतन रीति रही ।
आंतरिक व्यवस्था सुगठित कर, घोषणा किया उसने न्यारी ।
छत्ता को देना चौथ आदि था दंडनीय कुसूर भारी ।
जन-मन आतंकित करने को, उसके सैनिक अतिचार बढ़े,
निज सैन्य शक्ति को सबल मान उसके भी मन के भाव बढ़े ।
अति उत्सुक था अतएव छत्र से करने को अब छेड़-छाड़,
कुछ संधि-वचन दे, पकड़ उन्हें, धोखे में देना था पछाड़ ।
बंदी करके इस भाँति उन्हें, औरंगजेब के पाश भेज,
यों इष्टपूर्ति कर, चाह रहा, निष्कण्टक करना राजभोग ।
बस इसी क्रूर उद्देश्य सहित, छत्ता को अपना दूत भेज,
सदेशा अपना दिया, व्यक्त करते, अपना बल-विभव-तेज ।
समुचित अभिवादन किए बिना, छत्ता से कहने लगा दूत,
(मिर्जा की पूरी अकड़ लिए, आया था जैसे मूर्त धूर्त)
"स्वामी मिर्जा अप्रतिम वीर, उद्दंड रहम दिल भी अपार,
वे महा पराक्रमी अद्वितीय योद्धा हैं मन में लो विचार,
यों पास तुम्हारे भेजा है, दिखलाते अपनी कृपा अमित,
आधीनता अभी यदि मानों तो, होंगे कुसुर सब मॉफ तुरत ।
स्वीकार कर चुका मिर्जा की, यह बात स्वयं औरंगशाह,
शाही मनसब मिल जायेंगे, यदि मानोगें उनकी सलाह ।"
"थे दुःखी हृदय में छत्ता अति, छत्रपति शिवा सुरलोक गए ।
शोकाकुल मन से, अस्तु बैठ, छत्ता भविष्य की सोच रहें,
अब दो मोर्चा का मुगल युद्ध, शायद उनको लड़ना होगा,
बुंदेली जनता की रक्षा, पालन-पोषण करना होगा ।
शिव-सदृश हिन्दु-संगठन सबल, सम्पूर्ण देश में निर्मित कर
यों मुगल-विरोधी आंदोलन, भारत-जन-मन में जागृत कर,
मुझको ही मुगलान्तक योद्धा, बनकर प्रतिक्षण लड़ना होगा,
गुरु शिवा गये, दायित्व मुझे, अब कठिन वहन करना होगा ।
इस भाँति सतर्क हुए, छोड़ा पूना जाने का निज विचार,
कर सुदृढ़ आतंरिक शक्ति चले, झेलना उन्हें था शत्रु-वार ।

इस बीच सदरु का दूत मिला, छत्ता ने मन में लिया ठान,
इस पाजी का भी शीघ्र नाश, करना अफजल खाँ के समान ।
बोले - 'तुम आये दूत बने, आचरण दूत के ज्ञात नहीं,
करते न वार हम स्यारों पर, इसलिए छोड़ता तुम्हें यहीं ।
अपने मिर्जा से जा कह दे, धामौनी-सूबेदार रहे,
सत्पालन करता प्रजा वर्ग का, समुचित पालन किया करे,
हम रार न छेड़ेंगे उससे, देंगे कार्यों में विघ्न नहीं,
पर चौथ हमारी दिया करे, लाये मन में अभिमान नहीं ।
यदि आगे कोई दुष्ट कार्य, खाँ कभी करेगा, याद रखे,
धामौनी की ईंटे उखाड़, हम देंगे समुचित दंड उसे ।
पहले खुद को जीते मिरजा, बुंदेलों पर तब हाथ धरे ।
अन्यथा नींद होगी हराम, रण होगा भीषण-ध्यान करे ।
संग्राम बिना ही विजयी बन, जो मन में इतना फूल रहे,
कह दे जा चौथ रोकने की, मत ऐसी भारी भूल करे ।"
वह दूत उधर को चला, छत्र सेनायें थीं एकत्र नहीं,
सीमित सेनायें जो भी थीं, कर सुदृढ़ चले, था शत्रु वहीं,
सुनकर सदेशा, मिर्जा भी, जल-भुन कर मन में खाक हुआ,
तत्काल सैन्य बल को विशाल, बस कूच हेतु आदेश दिया,
चिल्गा, नौरंगाबाद ओर उसकी, विशालवाहिनी बढ़ी,
छत्ता के सैनिक दल की थी, चूल्हों पर रोटी-दाल चढ़ी ।
अतएव सूचना दे उनको, लेकर कुछ अपने घुड़ सवार,
बढ़ चले स्वयं रोकने हेतु, कर दिया शत्रु पर विकट मार ।
मिर्जा को भी बुंदेलों की संख्या का था अनुमान नहीं,
उल्टे पैरों वाहिनी भगी, यह देख हुआ हैरान वहीं,
इस बीच भोज्य से हो निवृत्त, बुंदेली सेना और बढ़ी,
आ भिड़ी पूर्ण तैयारी से, पीछे से परशुराम टुकड़ी ।
मिर्जा ने बिखरी सेना को, फिर से भिड़ने को ललकारा,
घिर गये शत्रु से छत्ता अब, पर विकट चल रहा दोधारा,
गिरि-वन की ओर हटे पीछे, छत्ता करते रण खेल चले,
गिरि-मोर्चा पर बुंदेल जमे, अरि को लेकर उस ओर चले,
मिर्जा समझे बुंदेल हारकर पीछे हटते भाग रहे,
इसलिए बढ़ा उत्साह, वेग से अपनी सेना बढ़ा रहे ।
पीछे सोलंकी परशुराम, अरि सेनाओं के बीच धँसा,
आगे छत्ता, फिर चतुर्दिशा बुंदेलों का छाया 'मोर्चा,'
आ गई मार के भीतर अब, मिर्जा की जितनी भी सेना,
घनघोर आक्रमण चतुर्मुखी, था कठिन मुगल दल का रुकना ।

रण-चंडी ने हुंकार भरी, किलकारें भर असि नाच रही,
सनू-सनू तीरों की बौछारें, गोली-वर्षा की आँच रही ।
चलते त्रिशूल थे समा बाँध, घच-घच मुगलों को काट रहे,
किस क्षिप्रवेग से लक्ष्य-बेध-तत्पर तीक्षण नाराच रहे ।
कट गिरे मुगल योद्धा कितने, सैनिक दल विकल कराह उठे ।
सेनप आहत, किस ओर भगें ? सब थे विभूढ़, भर आह उठे ।
देखा छत्ता ने मिर्जा को, हाथी से घोड़े पर आया,
भागने हेतु रण-क्षेत्र छोड़, उसने अपना पथ अपनाया ।
असि तान विजयिनी छत्रसाल, सीधे सन्मुख ही आ धमके ।
बुंदेले वीर बढ़े आगे, मिर्जा के नायक आन डटे ।
वह वीर गरीबदास आगे, बढ़ स्वयं अकेला जूझ गया ।
सिर से विहीन घायल कबंध, असि के करता आखेट गया ।
घेरा छत्ता ने मिर्जा को, मुगली सेना सब काँप उठी,
बुंदेलों की तलवारों की 'छप-छप-छप' तीखी आँच उठी ।
रुंडों-मुंडों से पटी धरा मुगली दल सब रणखेत रहे,
बंदी मिर्जा अब विवश, पेड़ से बँधे, खड़े देखते रहे ।
कोसों तक पीछा किया वीर बुंदेलों ने सब मुगलों का,
कितने बंदी सरदार लिए, लौटे करते रण का हाका,
सब ऐंठ मिट गई मिर्जा की, अब क्षमा हेतु कर-बद्ध रहे,
अब चौथ चुकाने को सदैव, दृढ़-वचन-हेतु प्रतिबद्ध हुए ।
घटना से अवगत औरंग ने, मिर्जा को वापस बुला लिया,
बेइज्ज़त कर दरबार बीच, मनसब पदवी सब छीन लिया ।
अफ़ासियान को धामौनी, का सूबेदार नियुक्त किया ।
छत्ता ने विजित प्रदेशों का, दौरा कर शासन सुदढ़ किया ।
बिठलाये जागीरदार वीर, सेना समेत जो उचित जहाँ,
निष्कंटक सारे मार्ग किए, बढ़ चित्रकूट की ओर पुनः ।
लूटता यात्रियों को सदैव, उत्पाती जहाँ हमीद खान ।
कर दिया नष्ट सेना उसकी, अपने सैनिक ले बल दिवान ।
कालपी, एरच, कोटरा लूटा, पकड़ा लतीफ़ जो फौजदार,
धन ले यथेष्ट छोड़ा उसको, करके फिर अपना चौथदार ।
ले अपनी सेनायें सारी, तत्क्षण फिर सागर ओर चले,
देवगढ़ जीत, फहरा भगवा, कुछ दिवस वहीं पर विरम गये ।

अब्दुल समद की पराजय-

उस सदरुद्दीन पराजय से, औरंगज़ेब था घबराया,
सोचा दिल्ली भी दूर नहीं, यदि छत्ता के मन में आया ।
इसलिए एक के बाद एक, सेनापति वह भेजता रहा,
उलझाये रखना छत्ता को, उसका बस अपना इष्ट रहा,

दिल्ली का सूबेदार वीर विश्वासी अब्दुल-समद रहा,
अब छत्रसाल के दमन-हेतु, उसकी नियुक्ति का प्रश्न रहा,
ले तीन हजार सवार, और पैदल-दल की भारी कतार,
गोला-बारूद बड़ी तोपें, बाँके पठान दल दस हजार।

ले अपनी सैनिक सामग्री, सीधे रण-स्थल में आया,
छत्ता ने सुनकर समाचार, सेनप अपने सब बुलवाया।
कर चार भाग निज सेना के, सबको रण-व्यूह विचार दिया।
बल दिवान, धँधेरे कुवँर सेन, अंगद को सब नेतृत्व दिया।

ले एक भाग निज सेना का, अब खुले युद्ध को योजित कर,
सेना के चारो भागों को, दो कोस मध्य की दूरी पर,
सब जमा दिए, दृढ़ व्यूह बना, सैनिक दल उत्तम शिक्षित कर,
थे सधे व्यवस्थित सभी वीर, रणनीति कुशल सब थे तत्पर।

सन्मुख थे डटे स्वयं छत्ता, अपने रण-बाँके सुभट लिए।
दायें बलदाऊ, बायें से थे कुअँर सैन असि विकट लिए।
दो कोस दूर पीछे घेरा, डाले थे अंगदराय जमे,
मौदहामार्ग से मुगल सैन्य, बढ़ चली आक्रमण के मग में।

थी दृष्टि जमी प्रत्येक मुगल, सैनिक की केवल छत्ता पर,
मुगली नायक जो देवकरण, आक्रामक छत्ता के हय पर।
आहत घोड़ा, तब भी स्वामी की रक्षा में स्फूर्त रहा,
आहत् छत्ता भी किन्तु कहीं, सामुथ्य न किंचित शिथिल हुआ।

अंगद को मिली सूचना तो, सेना आगे को बढ़ा दिया,
कर विकट मार मुगली सेना का, ध्वस्त सभी कर व्यूह दिया।
थे उभय पक्ष से कुअँर सेन, बलदाऊ अरि को तोड़ रहे,
जय विंध्य-वासिनी चंडी की, हर-हर बम व्यापक घोष रहे।

कुछ मुड़ीं मुगल तोपें उन पर, लग सके पलीता किन्तु नहीं।
तत्क्षण बुंदेले टूट पड़े, कट गये तोपची सभी वहीं।
छत्ता-मोर्चे को अंगद ने, आगे बढ़ शीघ्र सँभाल लिया।
आहत हय के उपचार हेतु, छत्ता को पीछे शीघ्र किया।

तप रहे शूर, तप रही धूप, तप महा भयानक युद्ध रहा,
आवेशपूर्ण योद्धाओं की हुंकारों से नभ गूंज रहा।
सन-सना बरसते तीर-तुपक, तोपें थीं गोले उगल रहीं।
खट-खट ढालों पर गिरे अस्त्र, छप-छप तलवारें बोल रहीं।

हिनहिना रहे रण-अश्व प्रबल, हाथी अविरत चिग्घाड़ रहे,
बलबला रहे थे ऊँट, बिंधे तीरों से विकल, कराह रहे,
रुंडों-मुंडों से पटी धरा, धँस रक्त-कीच योद्धा बढ़ते,
जो गिरे पड़े योद्धा भू पर, हय-हाथी, पावों से दलते।

दोनों पक्षों के सुभट भिड़े, दोनों पक्षों के सुभट गिरे,
रण-बाँके योद्धा किन्तु नहीं, पग भर भी पीछे कहीं फिरे,
सब सैयद-शेख-पठान-शूर, आवेश भरे बढ़ते आये,
अपने रण-कौशल दिखा, अमित श्रम-शिथिल हुए वे क्षण आये।
अब विद्युत गति से टूट पड़े, छत्ता के गिरि-वन छिपे वीर।
जसवंत सिंह ने खींचा ज्यों, निज विकट पराक्रम की लकीर।
भगवंतशाह, दलशाह, किशन, वे उदयकरण रणखेत रहे।
वे महाकाल की वेदी पर, जय मातृभूमि की बोल गये।
कँपते जिनसे अरि-प्राण रहे, प्रलयंकर प्राण समोये थे।
वर वीर वही रण संगम में तीखी नोकों पर सोये थे।
मरती-कटती वह मुगल सैन्य, आ गई तराई के समीप।
बुंदेली सेना झपट पड़ी जो छिपी तराई के समीप।
थे घिरे छत्र अरि सेना में, थे बचा रहे अरि के प्रहार।
पर पीछे मुगलों के बुंदेलों का छाया तांडव अपार।
बाहर-भीतर से विकट मार, हो गये मुगल बल हतोत्साह,
उनकी तोपें अब उन पर ही थीं आग उगलतीं धुवाँधार,
दिन ढलते भागे-तितर-बितर, बंदी अब अब्दुल-समद हुआ-
उसके शस्त्रास्त्र, अश्व तोपों पर छत्ता का अधिकार हुआ।
शस्त्रास्त्र फेंक सैनिक भागे, जिसको जो, जैसी राह मिली,
बुंदेले वीर खदेड़ रहे, ज्यों ढोरों की हो गोप गली।
कुछ क्षण पहले, शाही सेना का सेनापति जो बना रहा,
अब वही पेड़ से बँधा, प्राण-भय से थर-थर- थर काँप रहा,
कर क्षमायाचना बार-बार, प्राणों की भिक्षा माँग रहा,
स्वेच्छया चौथ देना सदैव, होकर अधीन स्वीकार रहा,
छत्ता ने छोड़ दिया उसको, निज सैन्य-सहित अब मऊ चले,
निज शेष सैन्य ले समद, वेग से दिल्ली-दिशि को भाग चले
सुन विकट पराजय अब्दुल की, सब मुगल वीर अब दहल गये।
आहत छत्ता भी मऊ मध्य, कुछ काल शांति से विरम गए।

बहलोलखाँ की पराजय-

भेलसा- क्षेत्र पर मुगल सैन्य ने था फिर से अधिकार किया।
सुन छत्रसाल ने सैन्य सजा, तत्काल उधर प्रस्थान किया।
कर लिया अधिकृत पुनः उसे, अपनी सब चौथे वसूल किया।
कर सीमापार अन्य शाही क्षेत्रों में, कर आतंक दिया।
बहलोल खान इसलिए, लिए काबुली सैन्यदल नौ हजार,
धामौनी हो मड़िया ढुह पर, आक्रामक था करके विचार-
"हैं छत्रसाल उस ओर दूर, मैं पन्ना पर आक्रमण करूँ,
जैसे भी हो सम्पूर्ण क्षेत्र, मैं मुगलों के आधीन करूँ।

चल पड़ा, किन्तु श्री जगत सिंह बुंदेले ने बढ़ किया वार,
वह सात दिवस रणरंग रहा, लपटें-झपटें थीं बार-बार,
मड़िया दृढ़ रक्षित रहा, किन्तु मर गये मुगल-सैनिक अनेक
अतएव उठा डेरा-डम्बर तत्काल राजगढ़ दिया छेक ।

उद्देश्य एक था छत्ता की, अनुपस्थिति में पन्ना जीते,
सूचना मिली जब छत्ता को, बहलोलखान पर आ टूटे ।
मारा हारावल सेनापति, लेभगा महावत हाथी को ।
बहलोल शाहगढ़-दुर्ग छिपा, था ज्ञान मातृ-भू पूतों को ।

छत्ता की ऐसी मार पड़ी, आहत धामौनी ओर भगा,
पीछे सह सैनिक छत्रसाल, घायल अरि को वह बाण लगा ।
'खाँ' सकुशल पहुँचा खुदागंज, हो गये मुगल-दल धूल-क्षार ।
सर्वत्र नियुक्त किए छत्ता ने सबल सयाने फौजदार ।

लूटा धामौनी-क्षेत्र, दुर्ग पर, फहरा भगवाध्वज निशान ।
सर्वत्र छत्र-जयकार हुई-मुगलों का सब मिट गया मान ।
मिर्जा सदरुद्दीन गिरे, अफ्रासियाब धामौनी का,
था सूबेदार नियुक्त हुआ, पर था मुरीद वह छत्ता का ।

चुपचाप चुकाता चौथ रहा, कर सका न किंचित रोध कहीं ।
औरंग ने उसको बुला लिया, इखलस खाँ को दे भार वहीं ।
शरणागत वह भी छत्ता का, सच्चेमन से सन्मित्र बना ।
ध्वज-संयुत अस्तु लौट आई, धामौनी से छत्ता-सेना ।

इखलस खाँ ने फिर मना लिया, छत्ता से वादा कर अपना,
दक्षिण की मुगली सेना में, छत्ता को भागीदार बना ।
दो-तीन माह तक छत्रसाल, मुगली सेना में बने रहे,
मनसबदारी में वृद्धि हुई, अश्वारोही दल अधिक मिले ।

पर उनकी उस अनुपस्थिति में, बुंदेलखंड के शत्रु उठे,
पा गुप्त-सूचना इखलस से, फिर छत्रसाल वापस लौटे ।
विद्रोही सारे कुचल दिए, भागे वे मुगली फौजदार,
बुंदेलखंड के भक्षणहित, जो दाँत पीसते बार-बार ।

देखा छत्ता ने औरंग की, वह कूटनीति करके विचार ।
गर्हित जो उसका भाव रहा, स्पष्ट हुआ अब सब प्रकार ।
अतएव त्याग शाहीसेवा, मनसबदारी, अश्वाधिकार,
निज मातृमही की रक्षा में, अब थे सतर्क निज अस्त्रधार ।

अपने प्रिय नेता को पाकर, बुंदेलों का उत्साह बढ़ा ।
शाही-सीमाओं में घुस-घुस, आक्रमण शक्ति था चाव बढ़ा,
छीना जलालपुर फिर मटौंध का दुर्ग घेर कर किया बार,
कर तहस नहस मुगली सेना पकड़ा शेर अफगन फौजदार,

सोलह हजार मुद्रायें दे जब किया आरजू बार-बार,
छोड़ा छत्ता ने उसे, किया जब चौथ चुकाना स्वीकार किया (१८-४-६४)

शाह कुली खाँ की पराजय-

औरंगजेब ने छत्ता को वशवर्ती करना कठिन मान,
भेजा एरच का फौजदार, निज विश्वासी शाह कुली खान।
लेकर शाही सेना विशाल, बुंदेल खंड जीतने चला।
थुरहट, कोटरा, जलालपुर, को पथ में करता विजित चला।

छीनता छत्र का राज्य-क्षेत्र, नौली में आकर ठहर गया,
अहमद खाँ नामक अन्य मुगल, हो गया सहायक, ध्वज फहरा।
जब ज्ञात हुआ यह छत्ता को, अपनी सेना को बढ़ा दिया,
यह युद्ध शत्रु-भू पर लड़ना, बलदाऊ को योजना दिया,

अब सब मिल नौली-ओर बढ़े, रणनीति नई सब सुझा दिया,
अपनी सेनायें छत्ता ने यों, खुले रुप में खड़ा किया।
"खाँ ने समझा, इस छत्ता को, लड़ना आता है युद्ध नहीं,
दोनों ने उनको घेर लिया, रणभेरी अपनी बजा वहीं।

अब घमासान छिड़ गया युद्ध, छत्ता की सेना बिखर भगी।
समझा मुगलों की जीत हुई, बुंदेले भागे हार सभी,
विजयोन्माद में पी शराब, उन्मन्त सभी झूमने लगे,
मद होशी में सब शिथिल, समर भू में नाचने-कूदने लगे।

अवसर देखा बुंदेल जमें, फिर घमासान रण-रंग हुआ।
कुछ ही क्षण में वह अहमद खाँ, जंजीरों में था बँधा हुआ।
कर चौथ चुकाने का वादा निज दंड हेतु दे धन भारी,
बलदाऊ जी की संस्तुति से, वह मुक्त हुआ, थी लाचारी।

था शाहकुली कुछ तो सचेत, उसने निज सेना प्रथक किया,
कुछ अधिक सैन्य की माँग सहित दिल्ली-सदेशा भेज दिया।
दे शीघ्र आठ सौ घुड़ सवार, कुछ पैदल सैनिक दल समान,
औरंग ने तत्क्षण भेज दिया हिन्दू-सेनापति नंदराम।

वह शाह कुली के साथ हुआ दोनों छत्ता के राज्य धँसे।
था लक्ष्य 'मऊ' उन दोनों का, उस पथ में दोनों शीघ्र बढ़े।
नौगाँव समीप पहुँचते ही, छत्ता के सैनिक जूझ पड़े,
छापामारी कर शत्रु हानि, गिरिबन श्रेणी को भाग चले।

यों युद्ध अचानक सात दिवस, था शाहकुली अति परेशान,
नायक हरावलिदस्ते का दुर्द्धर्ष वीर था नंदराम।
था समझ गया यह 'खान' बुँदेले-आक्रामक जो भी आते।
विद्युत-सा करके मारकाट, गिरिवन में जाकर छिप जाते।

अतएव आज्ञा दी अपने, सैनिक दल को- "हो सावधान,
गिरि-श्रेमी पर चढ़ शीघ्र करो, बुंदेलों से रण घमासान।

मारो जो भी मिल जायँ जहाँ, बुंदेलों को तुम घेर-घेर,
कल करना है तुम को वीरो ! गिरि पर बुंदेलों का अहेर।
योजना खान की ज्ञात हुई, अतएव सामरिक दृष्टि डाल।
छत्ता ने अर्द्ध-निशा में ही, अपनी सेना का बिछा जाल।
योजना-बद्ध सह-सैन्य वीर, नायक सचेत गिरि-ओट जमे।
मुगलों के संभावित पथ में, बंदूक-धनुष लेकर कर में।
अभियान प्रात में मुगलों का, आरम्भ हुआ गिरि-आरोहण,
नेतृत्व कर रहे नंदराम, आधे गिरि तक बढ़ गये चरण।
अब लगे बरसने शिलाखंड, धनुषबाण, गोलियों के प्रहार,
आहत, मृत लुढ़के गिरि-नीचे, कितने सैनिक-दल, घुड़ सवार,
आहत-अचेत हो नंदराम, गिर गया, लुढ़क चट्टानों में,
भगदड़ प्राणों के हेतु पड़ी, रुचि रही न गिरि-आरोहण में,
भगती सेना पर टूट पड़े बुंदेले असिधारी प्रवीर।
जो जहाँ मिले, उनकी छाती, बुंदेली-बाहें रहीं चीर।
हो गयी ध्वस्त सब मुगल-सैन्य, बंदी हो शाह कुली आये।
दे सवा लाख का दंड़दान, निज प्राण-मोक्ष तब कर पाये।
इतना ही लेकर दंड छत्र ने, नंदराम को भी छोड़ा।
कर जोड़ राठ को कुलीचला, नंदा को एरच में छोड़ा।
अब पुनः आक्रमण नहीं करेंगे, देकर अपना वचन गये।
छत्ता का भीषण रण कौशल, अपनी आँखों से देख गये।
औरंगजेब ने शाहकुली का सुना पराजय-समाचार।
कटि जैसे उसकी टूट गयी, होकर निराश मन गया हार।
अब टूट गयी बुंदेल खंड को पाने की उसकी आशा,
हो बैठा जैसे उदासीन, मुख पर छाई मन की भाषा।
अब छत्रसाल से भिड़ने की उसकी ज्यों सारी शक्ति गयी।
उसकी शाही की सत्ता की, बल की वह सारी ऐंठ गयी,
सोचा उसने अब छत्रसाल को राजा का दे सम्मान सही,
स्वीकृत कर उसकी सत्ता को, करना समुचित व्यवहार सही।

शेर अफगन की पराजय-

पर उसी समय कुछ नयी नीति, औरँग के सन्मुख घटित हुई,
स्थगित किया अपना विचार, अतएव मानकर बात वही,
शेर-अफगन अमित प्रसन्त हुआ, ज्यों शाह-कुली की हार हुई,
अपना सम्मान जमाने की इच्छा, उसकी साकार हुई।
यह देख सुअवसर औरंग से, उसने यों मन की बात कहीं।
बुंदेल खंड का शाह कुली को, अनुभव इतना अधिक नहीं,
यदि एरच राठ का फौजदार, श्रीमन् ! वख्शिश दें मुझे वहीं,
निश्चित है क्रमशः छत्रसाल की सत्ता देंगे कुचल कहीं।

अतएव बनाया एरच-राठ का, फिर से उसको फौजदार।
वह ऐंठ भरा आया, परन्तु कुछ सका न सत्ता का बिगाड़।
उल्टे छत्ता ने लूट उसे, दे दिया अचानक ही झटका।
छीना जो लेकर आया था, सेना-साधन सब कुछ फटका।

औरंग ने दंडित किया उसे, पर किया आरजू बार-बार,
राणौद क्षेत्र का बना दिया फिर से उसको ही फौजदार,
ले पैदल आठ हजार, और अश्वारोही-दल छै हजार,
गढ़ घेरा मऊ सहनिया का छत्ता भी रण के कलाकार।

चुपचाप किला से निकल गये, छोड़े कुछ प्रहरी समझदार।
अफगन को ज्ञात न हो पाया, ठहरा, सहता गोली प्रहार।
नौ सौ सैनिक इस भाँति मरे, दिल्ली से रण-व्यय मिला नहीं।
अब धन की भारी कमी हुई, भागा घेरा को उठा वहीं।

जाते-जाते उसने परन्तु, इतनी वीरता प्रदर्शित की,
लूटा सब मऊ-सहनिया को, धन-धान्य पूर्ति यों उसने की।
होकर प्रसन्न अब औरंग ने, उसको खिलअत तलवार दिया,
मालवाक्षेत्र के गागरौन पर अब उसने अधिकार दिया,

अब पुरस्कार कुछ और मिले, उसको शाही-सम्मान मिला,
धन-सहित उसे ही औरंग से,वह गागरौन परगना मिला।
अब लोभ बढ़ गया, सर्वश्रेष्ठ निज को ही योद्धा मान लिया,
झुनवरना मेंफिर अकस्मात, छत्ता पर आ आक्रमण किया,

छिड़ गया भयानक युद्ध,सात सौ बुंदेले रण खेत रहे,
झुरमुट तीरों-तलवारों का, योद्धा भिड़ते समवेत रहे,
धम-धम धौंसा थे धमक रहे, चल रहीं गोलियाँ धुवाँ धार,
खड़-भड़ असि भालों-ढालों की, थे जूझ रहे पैदल सवार।

छत्ता भी घायल हुए किन्तु बंदी बन अफगन लगा हाथ।
घायल था गोली लगी उसे, उठवा लाये यों पकड़ साथ।
उसके बंदी होते ही सब, मुगली सेनायें भाग गई।
सेनानी जितने साथ रहे, उनकी भी रूहें काँप गई।

औषधोपचार सब व्यर्थ हुआ, अफगन की दशा न ठीक हुई।
सौंपना आत्मजों को उसके चाहा, पर उसकी मृत्यु हुई।
मरगया शेर अफगन, मुगलों की लेकर अंतिम साख गया,
औरंगजेब की मृत आशा, लेकर वह अपने साथ गया,

छत्ता को करने को परास्त, इच्छा थी उसके साथ गई,
बुंदेल खंड से औरंग की अब सारी शास्ति समाप्त हुई।

१२- राज्य सुव्यवस्था

अपने पौरुष से प्राप्त राज्य की, सुदृढ़-व्यवस्था-ओर सभी,
अब ध्यान दिया नर छत्ता ने, सेना-सेनापति जोड़ सभी ।
पन्ना कर पाट-राजधानी, अवशेष शत्रु जो दिया कुचल,
चौकसी-हेतु सरदार प्रतिष्ठित हुए, राज्य में सह-दल-बल ।
अधिकांश सैन्य रख मऊ मध्य, अपने ही सुदृढ़-नियंत्रण में,
अपनी दृढ़ता की मूर्ति शक्ति,अब व्यस्त राज्य-संरक्षण में (१६-४-६४)
निश्चिंत हुए अब छत्ता भी ज्योतित करने को मुक्तिज्वाल ।
भारत के कोने-कोने में, सम्पर्क किए व्यापक विशाल ।
संबंध पूर्व से, महाराष्ट्र से सीधे ही था बना हुआ,
छत्रपति शिवा-उपरान्त, पूर्ववत् ताना-बाना जुड़ा हुआ,
गोविन्द सिंह खालसा-पंथ, मुगली-विरुद्ध असि-पाणि उठा,
धार्मिक-सामाजिक मुक्तिभाव, राष्ट्रीय प्रभुत्व झकोर उठा,
वह था विशुद्ध जो धर्म-पंथ, अब यौद्धिक-शक्ति-प्रणीत हुआ ।
'सब हिन्दु-वीर असि-पाणि बनो, रक्षा का नूतन गीत हुआ ।
वे दुर्गादास उठे उर में, राजस्थानी मरु-ज्वाल लिए,
रणधीर मराठावीरों से, संबंध बढ़ाये इसीलिए ।
छत्ता ने सब जानते हुए, संबंध प्रगाढ़ किए अपने,
संदेशों के थे सूत्र जुड़े, थे दौत्य-कर्म के तान तने ।
आ गये मराठे थे सिरोंज तक, नीमा को संदेश दिया,
आक्रमण करो तुम उधर, इधर हम भी हैं, यह संकेत किया ।
मालवा जीत लेंगे हम सब, फीरोज जंग को कर परास्त,
पर नीमा जी कुछ हिला नहीं, हो गया मराठा-दल परास्त ।
यदि नीमा जी शिंदिया मान लेता छत्ता की बात प्रथम,
इतिहास बदल जाता सारा, जुड़ जाते मुक्ति प्रयास स्वयं ।
छत्ता की भी निर्बलता थी, छोड़ते मुगल सेनानी जो,
बस वही उपद्रव कर देते, अवसर पर बन हैरानी जो ।
वह पृथ्वीराज-मुहम्मद गोरी का इतिहास भुला बैठे ।
'कोरी वीरता हानि कर होती है-' विवेक क्यों खो बैठे ।
भूलो मत भोले भारतीय भारत के न्याय-विधानों में
छल-बल से असुर-विनाश करो ओ वीरों ! रण अभियानों में
स्व-पराक्रम अर्जित-राज्यवृहद् विस्तृत संरक्षण-भार हुआ,
इसलिए व्यवस्था-गठन-हेतु, उनका विशेष था ध्यान हुआ,

फीरोज जंग भी छत्ता पर, आक्रमण-हेतु था सोच रहा,
पर छत्ता के बल से अवगत, उसके मन में संकोच रहा,
विद्रोही हिन्दू-गठन-हेतु, उनके प्रयत्न को जान गया,
इसलिए पत्र लिख औरंग को, उसने अपना संदेश दिया।
शत्रुता उचित अब नहीं, हिन्दुबल हो सारे संगठित रहे,
छत्ता के प्रति व्यवहार बदल, अब नूतन शाही-नीति रहे।
फीरोज-जंग भी मित्र बना, छत्ता का अब हो गया शाँत,
फिर लिखा संधि का क्षमा-पत्र, औरंग से आग्रहकर नितांत,
"दुर्दम्य योद्धा छत्रसाल, समझौता ही श्रेयस्कर भी,
दे उनको राजा की उपाधि, दें पंच हजारी मनसब भी।
साथ ही आत्मज हिरदे को, व पद्‌म सिंह को मनसबदे।,
अब दिल्ली पति था विवश, संधि की शर्तों को झुक स्वीकृति दे।
गृह कलह बढ़ी थी शाही में, औरंग था मन से परेशान।
बाहर से था ही घमासान, अब घर में भी था घमासान।
सिख, राजपूत, बुंदेलवीर, धकधका रहा था महाराष्ट्र।
मुगली सेनापति अधिकारी, पग-पग पर खाते रहे मात।
अब गृह-विद्रोही पुत्र हुए, औरंग निज हत्या के भय से,
प्राणों की आशंका लेकर, अति पीड़ित था वह अंतर से।
अतएव परिस्थिति वश उसने, कर लिया संधि को स्वीकार,
दे चार हजारी मनसब, महराजा उपाधि भी साधिकार,
दोनों ही राजकुमारों को भी मनसब बाँटे कर विचार।
दे एक हजारी, पाँच सदी, अश्वारोही दल भी हजार।
अब शाँतिकाल था, छत्ता ने बुंदेलखंड को सुदृढ़ किया,
सेना शासन की समुचित जो, सम्पूर्ण व्यवस्था सबल किया,
सह सैन्यवीर ले शाही के, दरबार मध्य भी पहुँच गये,
मुगली सेना के साथ स्वयं दक्षिण भारत की ओर गये।
स्थिति आँखों से देख सही मिल सभी मराठा वीरों से।
लौटे, प्रसन्न हो मिले सभी अपने बुंदेला शूरों से,
कुछ दिन में ही औरंगजेब, जब खुदागंज को पहुँच गया।
गड़गया दुष्ट अब धरती में, छत्ता ने उत्तर मार्ग लिया।
थे अधिक समय से छत्रसाल बुंदेलखंड से दूर रहे
पर उनके सुदृढ़ स्वराज्य भाग से मुगल बराबर दूर रहे।
सब शांत रहे संबंध बना, व्यवधान न कोई खड़ा किया।
लौटे छत्ता जब दिल्ली से, अपना भी अनुभव यही किया।
जनता थी सारी सुखी शाँत, अपनी स्वतंत्रता भोग रही,
चल रहा व्यवस्थित राज-काज, विपदायें सब थीं दूर हुई।

राज्यदान और राजतिलक -

संपूर्ण राज्य का भ्रमण किया, छत्ता ने अनुभव यह पाया,
सम्मान उन्हें देती जनता, जन-मन ने उनको अपनाया ।
सहभागी मुक्ति-प्रयासों में, उनकी तन-मन-धन से सारी ।
सुख-दुख विपदायें सहने को, छत्ता के सँग में तैयारी ।
यह भाव जगाने वाले थे, जन-जन में स्वामी प्राणनाथ ।
कुछ दे न सके उनको, छत्ता ने सोचा मन में अकस्मात् ।
अतएव उठे प्रातः मंगलवेला में गुरु के दरश किए ।
हो भाव-विभोर-सश्रद्ध नमन करते, पावन गुरु-चरण हुए ।
संपूर्ण राज्य का दानपत्र, सौंपा उनको निर्मलनन से,
ज्यों मनका सारा भार मिटा, जिसको लेकर श्रम-बोझिल थे ।
पर गुरु ने समझाया "छत्ता ! यह राज्य न मेरा - तेरा है,
यह देश सभी है जनता का, कर्तव्य-मात्र ही तेरा है ।
कर रहे त्याग तो तुम अपना, सम्पूर्ण कर्मफल त्याग करो,
प्रभु की इच्छा ही मान, हृदय में अहंकार मतकभी करो,
यह जो विशाल-साम्राज्य बाहुबल से तुमने निर्माण किया
उस प्रभु की कृपा-प्रेरणा से ही तुमने उसको प्राप्त किया ।
यह प्रजा बना प्रतिनिधि तुमको, अपना जो सुख से निवस रही,
पालन उसका सच्चे मन से, निश्चित कर्तव्य तुम्हारा ही ।
उच्चाशय हो निज जीवन में दुर्व्यसन न कोई वरण करो,
कर्तव्य भावना से तत्क्षण, कर्तव्य सभी जो पूर्ण करो,
रण-विजय तुम्हारी ही होगी, वरवंश समृद्ध सदा होगा,
होगी स्वराज्य-भू रत्नधरा, धन-धान्य न किंचित कम होगा ।
गुरु-दक्षिणा-रूप में देस्वराज्य, तुमने मुझको संतुष्ट किया,
अब तुम संरक्षण दो उसको, मैंने प्रसाद में तुम्हें दिया ।"
यह कहते थोड़ी धूल उठा, छत्ता-ललाट का तिलक किया,
अब जाओ, विधिवत् राजतिलक, कर लो मैंने आशीष दिया ।
दिल्ली-सिंहासन-हेतु उधर औरंग पुत्रों में युद्ध छिड़ा
सबने ही अपने पक्ष-हेतु, था छत्ता का दामन पकड़ा,
व्यवहार उचित कर, किंतु सभी से लगभग स्वयं तटस्थ रहे,
वे सभी स्वयंभी, यथा-समय, छत्ता को देते मान रहे ।

(प्रातः गुरुवार २१-४-९४)

१३-बंगश-विनाश

हिन्दू-विरोध की नीति क्रूर, औरंग के अति प्रतिकूल पड़ी।
हिन्दू-प्रवीर हो क्रुद्ध उठे, जन-भारत-ज्वाला भभक पड़ी।
पंजाबी हिन्दू-सिक्ख उठे, हरियाणा राजस्थान उठा।
वह महाराष्ट्र का ज्वालामुखि, बुंदेलखंड का दाव उठा।
औरंगजेब के सन्मुख ही, सिमटा ज्यों पाट महत्ता का।
उसकी आँखें मुँदते ही बस, हो गया समापन सत्ता का।
छत्रपति शिवा के नाती शाहू जी प्रवीर छत्रपति हुए,
दादा-समान ही सुदृढ़ हिन्दु-संगठन-हेतु जो लगे हुए।
छत्रपति शिवा के शिष्य वीर, 'छत्ता' भी उनसे सुहृद्भाव
रखते थे सदा, न उर में थे कोई ईर्ष्या-कटुता-दुराव।
दोनों के अतुल पराक्रम से, यवनों की शास्ति समाप्त हुई,
भारत-भू-मंडल में दोनों की, कीर्ति-कौमुदी व्याप्त हुई।
दोनों की तीक्ष्ण अनी-असि से, हिन्दू-मन-भीति समाप्त हुई,
सज्जन निर्बल, पीड़ित-जन को, निर्भय-जीवन-आश्वस्ति हुई।
दोनों ही हिन्दूवीर एक ही पथ के पथिक समान रहे,
दोनों ही धर्म-धरा-रक्षक, भारत के गौरव-गान रहे,
शासक-दिल्ली के आस-पास, मुगली शासक थे नाम मात्र,
फिर रहे लुटेरे डाकू सब करते जनता में लूट-पाट।
था एक मुहम्मद खाँ बंगश, लेकर पठान दल कुछ हजार,
अनियंत्रित मुगली सत्ता से, करता रहता नित लूट-मार।
था केन्द्र रसीदाबाद मऊ, बंगश की सेना जहाँ जमी,
राजाओं-जागिरदारों के, पारस्परिक द्वंद्व में जो अपनी,
सेना ले युद्ध किया करता, जिससे मिलता धन भारी था,
हो गई शक्ति थी प्रबल, मात्र धंधे से वह पिंडारी था।
औरंग के पुत्र बहादुर शाह की, मृत्यु हुई ज्यों ही न्यारी।
जहाँदार शाह, फर्रुखसियर में हुई युद्ध की तैयारी।
बंगश की ले करके सहाय, फर्रुख ने सिंहासन पाया,
बंगश बनगया नवाब, चार हज़ारी मनसब भी पाया।
साथ ही सैन्य-व्यय-हेतु उसे कालपी-एरच के क्षेत्र मिले,
वह छत्रसाल का राज्यभार, पर कूटनीति के दाँव चले।
छत्ता से लड़ने का साहस, फर्रुखसियर में नहीं रहा,
इसलिए मुहम्मद खाँ बंगश को मात्र भिड़ाना चाह रहा,

बंगश नवाब अब सेनापति, हो गया मुगल जागीरदार
अधिकारी किए नियुक्त कई, सहयोगी दिल्ली राजद्वार ।
करशीघ्र पदच्युत फर्रुख को, दिल्लीश मुहम्मदशाह हुआ
अब सप्त हजारी मनसब बंगश, सूबेदार इलाहाबाद हुआ

की पीर अली खाँ की नियुक्ति, देकर सैनिकदल सरदारी,
ज्यों हुआ कालपी-अधिशासक, तोड़े उसने मंदिर भारी ।
था अति असह्य यह छत्ता को, वह रही चुनौती ज्यों भारी
मारा चढ़ पीर अली खाँ को, छीना अपनी धरती सारी,

मस्जिद तुड़वाकर, फिर अपने पावन-मंदिर निर्माण किए,
बंगश विचलित हो उठा, युद्ध के उसने नूतनसाज किए ।
कुछ ठहर इलाहाबाद-मध्य, करके संग्रह सेना विशाल,
दिल्ली से भी उलुमराँ खाँ, लाया सैनिक-साधन कराल ।

सम्मिलित उभय सेनायें ले, अति शीघ्र कालपी ओर चले,
सूचित कर उधर मराठों को, छत्ता ने रण के रंग बदले ।
हो गया मराठों का तत्क्षण, आक्रमण ग्वालियर पर भारी,
बंगश बढ़चला उधर, छत्ता ने पीछे की मारामारी,

थे हिरदेशाह, जगत सन्मुख, बंगश के छक्के छूट गये,
जिन उत्साहों से चढ़ा-बढ़ा, झटके में जैसे टूट गये ।
दोनों पाटों में फँसा, विवश हो, शीघ्र संधि-प्रस्ताव किया
छत्ता ने माना उसे, उभय ने, अल्प समय का दाँव किया ।

कट गये अमित सैनिक, विनष्ट भारी सैनिक सामान हुआ,
टूटा मन लिए प्रयाग-ओर, उसका तत्क्षण प्रस्थान हुआ ।
कुछ समय शाँत-सुस्थिर होकर, की पुनर्गठित सेना भारी,
फिर पार किया यमुना उसने, लेकर तोपें जितनी सारी,

सेना के करके तीनभाग, रख एक भाग वह अपना जो,
सौंपा दूसरा दाद खाँ को, तीसरा पुत्र कायम खाँ को ।
तीनों सेनायें एक साथ, अब तीन क्षेत्र की ओर चलीं,
यह अति विशाल वाहिनी प्रबल, बुंदेल खंड को घेर चली,

बुंदेले रहे अल्प-संख्यक, सम्मिलित न संभव युद्ध रहा,
लड़ रहे प्राण-प्रण से यद्यपि, अरि-ब्यूह पूर्ण अनिरुद्ध रहा,
छत्ता अस्सी के वृद्ध रहे, तबभी धारण कर कवच त्राण,
नेतृत्व संभाले रहे, इचौली का संगर कर घमासान ।

मारा बंगश के सेनापति भूरेखाँ और दिलावर खाँ ।
विचलित सैनिक रण खेत गिरे, था चकित देख यह बंगश खां ।
छत्ता सालहट-वन आये, पीछे अजनार पहाड़ी पर,
फिर वर्ष एक तक युद्ध चला, अवरुद्ध रहा बंगश अजगर ।

अब सुना कि वंगश की सहाय, आ रही नई मुगली सेना,
अतएव विचारा, अब बंगश-विनाश का कुछ उपाय करना।
यह पता चला अमझेरा में, विजयी वर वीर मराठों ने
उज्जैन मालवा को अधिकृत, कर लिया चिमाजी अप्पा ने।

स्मरण हुआ शिवराजा का हिन्दुत्व-सुरक्षा-आश्वासन,
आवश्यकता जहाँ होगी, आयेंगे वीर मराठे रण-वाहन ।
थे किंतु नहीं अब वीरशिवा, नेता अब बाजीराव रहे,
इसलिए पत्र मर्म-स्पर्शी लिख, तत्काल दूत निज भेज दिए।

"लड़ रहे मराठे-बुंदेले, हिन्दुत्व-सुरक्षा-हेतु सभी,
बुंदेलखंड पर संकट के बादल छाये हैं हे बाजी !
आक्रमण घोरतम बंगश का, संकट में हिन्दू-राज्य-घिरा,
यह साठ वर्ष के श्रम का फल, हो रहा व्यर्थ ज्यों युद्ध छिड़ा।

आशा है मात्र आप से ही, हम बुंदेले निरुपाय हुए।
उद्धार हमारा करोशीघ्र, अपनी विजयिनि सेनायें ले।
आयें अतिशीघ्र, आपके पथ में आँखें हैं बुंदेलों की।
बंगश को शीघ्र पराजित कर, आपदा हरें हिन्दू-जन की।

गज-ग्राह-युद्ध में गज की जो, स्थिति थी, वैसी अपनी भी,
जैसे भी हो परित्राण करो, आ लाज बचाओ हे बाजी !
'जो बीती गजग्राह पर, सोगति भई है आज,
बाजी जाति बुंदेल की, राखों बाजी लाज ।"

मर्म-स्पर्शी था पत्र, हृदय पर बाजी के तीव्र प्रभाव रहा,
हिन्दुत्व सुन रहा, संकट में जैसे हिन्दुत्व पुकार रहा,
इस हिन्दु-वीर ने ध्यान दिया, उस हिन्दु-वीर के संकट को,
चल पड़ा लिए निज सैन्य सबल, संदेश भेजते छत्ता को -

"हम आते शीघ्र, निराश न हो, हे वीर ! धैर्य से भिड़ो वहीं।
वंगश का कर देंगे विनाश, रण सेपीछे पग धरो नहीं,
अप्पा जी को भी सूचित कर, हम आते सब तैयार रहें,
कर एक साथ प्रस्थान, शीघ्र बुंदेलखंड का त्राण करें ।"

(प्रातः २६-३-६४)

था आवागमन अगम्य महा, उत्तर से दक्षिण भारत का ।
दो माह बीतने पर आया, उत्तर उत्तम नर बाजी का ।
अनुमान किया अब छत्ता ने, बीतेंगे अब भी तीन मास,
वर वीर पेशवा बाजी तब, पहुँचेंगे मेरे यहां पास ।

अतएव शीघ्र आदेश दिया, सुविवेकी सेनापतियों को
संग्राम-काल दीर्घतर करो, कौशल से मारो अरियों को
उलझाया शत्रु-सैन्य सारी, परिवर्तित कर संग्राम कला,
प्रतिदिन बुंदेला सेनापति, आक्रामक होता जो इकला ।

कर हानि शत्रु की अधिकाधिक, लौटते साँध्य में युद्ध वीर,
इस भाँति शत्रु अवरुद्ध रहा, सह रहा हानि जो अति गँभीर।

वीरांगना रानी जैत कुँवरि -

था दिवस एक जब जगतराज, सेना ले भिड़े, पठानों से,
दिन भर भीषण-रणरंग हुआ, हटते-बढ़ते दल वीरों के।
ढलती संध्या में हुआ तीव्र, आक्रमण प्रवीर पठानों का
कुछ दूर हटे बुंदेल विवश, था दिवस घोर बलिदानों का।
आहत हो मूर्च्छित जगतराज, गिर गये युद्ध की अवनी पर,
हड़बड़ थी जो बुंदेलों में, था ध्यान न कुछ सेनानी पर।
लौटे ज्योंही वे शिविर मध्य, थे जगतराज जू कहीं नहीं,
यह जैत कुअँरि ने सुना, ला सके, सेनापति को साथ नहीं।
तत्काल कवच निज धारण कर, ले नंगी असि चढ़ घोड़े पर,
ललकारा "योद्धा संग चलें, जो चलना चाहें रण-तत्पर।
मैं घायल पति को शत्रु-करों में, कभी नहीं पड़ने दूँगी।
धँस स्वयं शत्रु के घेरे में, अपने पति को ले आऊँगी।"
उठ चले बुँदेले वीर शीघ्र, रानी के सँग रण-भूमि ओर,
मच गया अचानक युद्ध, पठानी दल भागे रण-अस्त्र छोड़।
आहत पति को ले शीघ्र लौट, आई रानी निज शिविरों में।
कर दिया अमर निजनाम, वधू ने इतिहासों के पत्रों में
सुन छत्रसाल थे अति-प्रसन्न, परगने दिए दो पुरस्कार,
उत्साह भरा बुंदेलों में, साहस की जय-ध्वनि थी अपार।
कुछ ही दिन में आ मिले उन्हें, गुप्तचर लिए शुभ-समाचार।
आ गये वीर-वर नर बाजी, ले अश्वारोही दल अपार,
दो-एक-दिवस में आ पहुँचे, छत्ता ने बढ़ अगवानी की,
लग गये गले युग हिन्दुवीर, प्रभु ने ज्यों पूर्ण कहानी की
फिर हुई मंत्रणा निशामध्य बुंदेलों और मराठों में।
अरि-सैन्य, तोपखाने साधन थे प्रमुख विषय उस चर्चा में।
निश्चित विचार कर सुदृढ़, अग्रदिन मिल दोनों सेनाओं ने।
अरि-शिविर चतुर्दिक घेर लिया, संकट छा गया पठानों में।
खाने-पीने की बात कहाँ था बंद कहीं आना-जाना,
प्रारंभ कर दिया भूखों ने, निज वर्ध, अश्व-आदिक खाना।
निष्क्रमण हेतु जो कढ़े, शीघ्र असि की धारों से उतर गए,
भुखमरी, प्यास से पीड़ित हो, बिनमारे सैनिक लुढ़क गये।
था बुरा हाल यों बंगश का, सूझता न था कोई उपाय,
थी मात्र यही आशा आयेगा 'कायम खाँ' लेकर सहाय,

पर फँसा पूर्वी छोरों में, 'कायम' निज सेना-साथ बुरा,
बुंदेल-मराठा वीरों ने, था भली-भाँति उसको कुचला ।
भारी सेना घिर कटी, स्वयं आहत हो रण से निकल गया ।
त्रय सहस अश्व, कुछ हाथी दे, सब अस्त्र-शस्त्र था छोड़ गया ।

कायम का सुनकर समाचार, बंगश का साहस टूट गया,
होकर निराश-कातर छत्ता से संधि हेतु प्रस्ताव किया ।
फिर दिया वचन, शीघ्र ही लौट बुंदेल खंड से जाने का,
अपराध करेगा नहीं पुनः बुंदेल खंड में आने का ।

इस दीर्घ युद्ध में व्यस्त, हानि छत्ता की भी कम नहीं हुई ।
इसलिए शांति की इच्छा ज्यों, उनका मन थी अवगाह रही,
इसलिए अधिक अब रक्तपात के बिना, क्षमाकर बंगश को,
कर लिया संधि-प्रस्ताव स्वीकृत, क्षमा कर दिया बेवश को ।

यों क्षमा मांग अपराधों की, बुंदेलखंड से चला गया,
देखा न पुनः इस ओर कभी, मन उसका ऐसा दहल गया ।
कुछ दिवसों में महराजा का, हो गया राज्य उससे विशाल
मुगलों का भी साहस टूटा, बुंदेल भूमि का कर खयाल ।

महाराजा छत्रसाल का, उनकी गौरवपूर्ण महत्ता का
संकटापन्न हिन्दू-स्वराज्य का, उसकी दिव्य-स्वतंत्रता का
संरक्षण का वह श्रेय रहा, नरवीर केशरी बाजी का,
महाराजा ने स्वीकार किया, आभार महत्तम उपकृति का ।

स्वीकार किया आत्मज तृतीय, दे एक तिहाई राज्य उन्हें,
बाजी भी अपने पिता तुल्य 'कक्काजू' कहते रहे जिन्हें ।
दो हिन्दु-शक्तियाँ मिलीं साथ, यह दीर्घ-युद्ध-परिणाम रहा,
मुगलांतक हिन्दू-दल-बल का, यह अद्भुत गौरव-गान रहा ।

(सायं ६ बजे २६-३-६४)

यह समय उचित था दिल्ली पर उस आक्रामक तैयारी का
सोचा न किन्तु क्यों वीरों ने, था अवसर मुगल तबाही का
उत्तम चरित्र सौंदर्य-युक्त, बलशाली योद्धा असामान्य ।
निज श्रेष्ठ गुणों से पूर्ण, बने इतिहास पुरुष जो महामान्य ।

निर्मल-चरित्र, उर से उदार, सेनानायक अति बलशाली,
साहसी, धीर, निर्भीकवीर, आदर्श चरित गौरवशाली,
व्यावहारिक जीवन के महापुरुष, थे महाराज छत्ता महान
जो भक्ति-भाव से पूर्ण रहे, निज देश-धर्म-रक्षक अमान ।

जनप्रिय शासक निज जनता में, हिलमिल सुनते उसकी विपदा,
थे श्रेष्ठ कवीश्वर, कवि-गुणियों को आदर देते रहे सदा
अत्याचारी मुस्लिम जन के, जो घोर शत्रु बलवान रहे,
उनके प्रति दया, क्षमा, ममता, वे सदा भूल ही मान रहे ।

आधारभूमि थी नीति, दुष्ट जन के प्रति बस दुष्टता करो,
संभव जैसे कर दो विनष्ट, उनको न भूल कर क्षमा करो।

(क) चाहो धन-धाम, भूमि भूषन मलाई भूरि,
सुनस सहूरजुत रैयत को लालियो,
तोड़ादार-घोड़ादार, वीरनि सों प्रीतिकरि,
साहस सों जीतिजंग, खेत ते न चालियो।
सालियो उदंडनि को, दंडिन को दीजौ दंड,
करि कै घमंड घाव दीन पै न घालियो।
विनती छत्रसाल करै, होय जो नरेश, देश -
रहै न कलेस लेस, मेरो कह्यो पालियो।

(ख) रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि,
छत्रसाल तेहिराज को, बार न बाँकौ जाहि।"

(ग) छत्रसाल जन-पालिबौ, अरिहि घालिबो दोय,
नहिं बिसारियौ धारियौ, धरा-धरन कोउ होय।

(घ) अपुनो मनभायो कियो, गहिगोरी सुल्तान।
सात बार छाड़यो नृपति, कुमति करी चहुआन।
कुमति करी चहुआन ताहि निंदत सब कोऊ,
असुर बैर, इकबार पकरि काढ़े दृग दोऊ।
दोऊ दीन को बैर आदि-अंतहि चलि आयौ।
कहि नृप छत्ता विचारि, कियौ अपुनौ मनभायो।"

थे शूर-वीर राजाधिराज, पर गर्वहीन अतिशय उदार,
शिव भूषण, स्वामी प्राणनाथ, के प्रति श्रद्धा का लिए भार,
वे हिन्दु-संगठक, हिन्दु-धर्म-रक्षक, जन-पालक वे महान,
थे अहंकार से शून्य, वीर-आदर्शों के योद्धा-प्रमाण।

(ङ) राजत अखंड तेज, छाजस सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय-साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत
ताप तजि दुज्ञन करत बहु ख्याल को?
साजसजि गजतुरी पैदरि कतार दीन्हे
'भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को?
और रावराजा अब मन में न ल्याऊँ अब
शाहू को सराहौं कि सराहौं छंत्रसाल को। -'भूषण'

कर प्रकट एक ही उत्तम गुण होता मानव जीवन महान,
जिसमें गुण श्रेष्ठ-समुच्चय हो, वह धरा-देव ही विद्यमान

(रविवार प्रातः ४ बजे, २७-३-६४)

१४- भा-रत भारत

भद्रमिच्छंत ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपासे दुरग्रे ।
तपोराष्ट्र बलमोजस्य जातं तदस्मै देवा उपसं नमन्तु ।-'अथर्ववेद'

'आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के प्रारंभ में जो दीक्षा लेकर तप किया, उससे राष्ट्र-निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी उत्पन्न हुआ। इसलिए सब देवगण इस राष्ट्र के सामने विनत होकर उसकी सेवा करें।'

(क)

ॐ आ ब्रह्मन ! ब्रह्मणों ब्रह्म-वर्चसी जायताम् ।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽ इषव्योऽ तिव्याधी महारथो जायताम् ।

(ख)

दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्ति पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः ।
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।

(ग)

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः
पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्

ब्रह्मन् ! स्वराष्ट्र में हो, द्विज ब्रह्म तेज धारी,
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी;
होवें दुधारु गौवें, पशु अश्व आशुवाही;
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही;
बलवान सभ्ययोद्धा, यजमान पुत्र होवें;
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें;
फलफूल से लदी हों, औषधि अमोघ सारी,
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ।

वरदानि मातु जय जगदम्बे ! विजयिनि माँ शक्ति ! त्रिशूल पाणि !
जय सिंहवाहिनी ! रणचंडी ! दुर्गे ! भारत की शक्ति-प्राण !
गर्जित रणसिंह, मातृकर में, लक्लक् त्रिशूल का महाफलक्
असुरों का करता महानाश, सर्वत्र व्याप्त माँ-तेज-दमक ।

इस धर्म-धरा पर व्याप्त हुआ, जब-जब असुरों का अनाचार ।
उस महाशक्ति की सत्ता ने, हरलिया शीघ्र वह अंधकार ।
जागे रणसिंह हिन्दू-भू के, माँ के अद्भुत वरदान जगे ।
भारत के ज्यों उद्धार हेतु, माँ चरणों पर बलिदान जगे ।

वह अनुपम शक्ति-शौर्य जागा, जग उठा धरा का स्वाभिमान ।
कितने साहस के रण-किशोर, उठचले राम ले धनुषबाण ।
उन आर्ययुगों के चक्र अभी, उन चक्रवर्तियों के सुनाम,
उन शौर्यमयी गाथाओं को, गाता अम्बर करता प्रणाम ।

भारत को करने भस्मसात, तूफान उठे जो गर्जमान,
क्षितिजों में व्यापक हुआ रोर, जैसे भूतल के उठे प्राण,
तत्क्षण अँगड़ाती जाग उठी तरुणाई भारत की महान् ।
भगवाध्वज वह उन्मुक्त उड़ा, अरुणाचल-अंबर-भा-समान ।

परतंत्र हुआ कब भारत यह ? संघर्ष मुक्ति का थमा कहाँ ?
योद्धाओं के करके त्रिशूल, इतिहास बताये, थमें कहाँ ?
इतिहास यही जब-जब अधर्म का, छाया आसुर अनाचार,
इस दिव्य धर्म हिन्दू-जन पर, पापी विदेश का हुआ वार

जागा तत्क्षण सारा स्वदेश, आये सन्मुख वे हिन्दुवीर,
जिनके तेजस्वी नेत्रों की, ज्वाला फैली तम-तोम चीर;
जब-जब भारत की धरती पर, आक्रांताओं का तंत्र हुआ,
रण-सिंहों के संग्रामों से, भारत फिर शीघ्र स्वतंत्र हुआ ।

वह मुक्ति-अरुण जागा जगमग, प्राची-श्री में नवराग ऋचा,
नर वीरों की यश गाथायें, कवियों ने कितने काव्यरचा,
कब कहाँ चैन की साँसें लीं, वीरों ने तब तक भारत के ।
जब तक असुरों की घटा घोर, मिट नहीं गई भारत-नभ से ।

उन असुरों का इतिहास मिटा, टूटी तलवारें, म्लेक्षों की ।
अंबर ने नापा असि-विद्युत्, उन मौर्य-वीर-वर गुप्तों की ।
देवासुर कटु-संग्राम हुए, पुरु, चंद्रगुप्त के रण-कौसल ।
यूनानी पढ़ इतिहास रहे, मर मिटा सिकंदर-बल घायल ।

शक हूणों की झंझावातें, मिट गये सिंधु जल के उफान,
असि की नोकों से लिख डाला, वर-वीरों ने निज विजय गान ।
देखती रूह होगी बेकल, मृत गोरी का वह क्षत-शरीर ।
जब वक्ष-वेध कर निकल गया, उस शब्द-बेध का तीक्ष्ण तीर ।

संग्राम सिंह रण से हारा, करता बाबर-रजनीचर छल,
क्या याद नहीं उस अकबर को, राणाप्रताप का वह प्रण-बल ।
क्या भूल गया होगा उसको, अपना पापी मीना बाजार ।
जब छाती पर थी चढ़ बैठी सिंहिनी 'किरण' तीखी कटार ।

अपने पापों की क्षमा माँग, कर जोड़ प्राण हित बार-बार,
'माता' कह जिसको मिला त्राण, हो गया बंद मीना बाजार ।
औरंगजेब ने जब ठाना, भारत इस्लाम बनाने को,
रणसिंह शिवा का तेज जगा, भगवाध्वज मुक्त-उड़ाने को ।

भारतमाता ज्यों मुखर हुई, माँ जीजाबाई की वाणी
उठ चले मराठे धीर-वीर, कर धर्म-ध्वजा की अगवानी ।
हिन्दू-चेतना अमर जागी, 'भूषण' की वाणी गरज उठी,
अतिचारी असुर मुगल-सत्ता को हिन्दूवाणी वरज उठी ।

वह दुर्गा दास, राजसिंह का, आक्रोश जगा कह हर-हर-हर ।
औरंगजेब-मन सहम गया, भय-कंपित डगमग सिहर-सिहर ।
जय-जय गुरु तेग बहादुर की, जय-जय वह बलिदानी बेला,
जिसने हिन्दू-मन जगा दिया, औरँग का सिंहासन डोला ।

सिख पंचवीर-रण-पाग बँधी, खड़की कृपाण रण-सिंहों की,
वह धर्म-धरा बलि देख रही, गोविन्द सिंह के पुत्रों की,
रणधीर जाट उठ खड़े हुए, सतनामी वीर प्रचंड उठे,
गुजरात-मालवा धधक उठा, बुंदेल खंड आसाम जगे।

लांचित वर-फुंकन ने उठकर, मुगली सत्ता का किया अंत,
हो गया बंद आना-जाना, हो गये असम के बंद पंथ ।
रानी दुर्गावति खेल रही, लेकर प्रचंड निज धनुषबाण ।
वह काट रही रण चंडी-सी, राक्षस-दल को, कर घमासान ।

ओरछा-नृपति का टँगा शीश, क्या कहते पुत्र-जुझार सिंह,
सुन मचल उठी रणधीर-भुजा, गर्जन करते उठ चले सिंह ।
चंपत जागे, सुत छत्रशाल, हरबोल जगी बुंदेलों की,
असि-भाले-ढालें झेल रहीं, चालें देखो रण-कौशल की ।

सोचो किन वीर भुजाओं ने, मुगली सत्ता का किया अंत ?
उस लाल किले के फाटक को किस अड़े अक्ष ने किया ध्वस्त ?
औरंगजेब के साथ, मुगल-सत्ता भी सारी कफन हुई,
भारत वीरों के भुजबल से आसुरी शक्ति सब दफन हुई ।

सोचो हिन्दू-बल-विक्रम को कैसे-कैसे नर वीर रहे,
अरि-मर्दन कैसे राष्ट्र-धर्म के, राष्ट्र-व्रती रण-धीर रहे ?
युवजन ! पावन, प्रिय भारत, यह देश महापुरुषों का है ।
यह जगतगुरु ज्ञानाभामय, यह देश महत् वेदों का है ।

जागे कितने ही क्रांतिवीर सत्तावन का इतिहास पढ़ो,
राजा दर्शन सिंह जैलाल सिंह, बेनीमाधव की याद करो ।
दरयाव सिंह, बावनीवीर, नाना, तात्या, झाँसी रानी,
सुंदर-मुंदर, झलकारी की लप्-लप् तलवारों का पानी ।

रानी-रक्षा में जूझ गई, सुकुमारी करती रण-जौहर,
भारत की भूको सींचगई, निज लहू-धार से झिर-झिर कर,
क्या भूलेगा बुंदेलखंड, अवंतीबाई वह लोधी रानी,
पूजती मुक्ति निज धरती की, देकर निज प्राणों का पानी,

यह मुक्त-प्राण की मुक्त धरा, निज आन-बान की मरदानी,
रमती जिसके वन-अंचल में, कितनी ही रण-सिंहिनि रानी।
उन वीर-प्रसू माताओं ने, उन देश-भक्त रण-धीरों ने,
इस धरा-मुक्ति की रक्षा की, योद्धाओं के असि-तीरों ने।

उनके बलिदानों का प्रसाद, हम भोग रहे जो वर्तमान,
ओ करो युवा ! झुक श्रद्धा से, उन वीर पूर्वजों को प्रणाम।
वे भगत-सिंह, आजाद-वीर, बटुकेश्वर, बिस्मिल अभिमानी,
जिन क्रांत-वीर के लोहू ने, की मुक्ति-चरण की अगवानी।

उन ब्रह्म देश के गिरि-वन से, नेता सुभाष के वे गर्जन,
योद्धाओं की हुंकारों से है, काँप रहा अब भी लंदन।
है कौन कह रहा भाग गये, अँगरेज अहिंसक चालों से,
बदली है धरती यह सदैव, झंझावाती भू-चालों से,

चाणक्य-सदृश योद्धा पटेल, भारत का उन्नत किए भाल,
भर रहा म्लेक्षों के उरमें, वह भयाक्रांत भारी हलचल।
सिर उठा गगन में विहँस रहा, वह सोमनाथ का स्वर्ण-शिखर,
जय बोल रहा हिमवान खड़ा, इतिहासों के शिव जय हर-हर'

जै-जैशिव, जै शिव महाकाल ! फिर से वह डिम-डिम नाद बजे,
आसुर-सत्ता हो क्षार-क्षार, भूतल वेदों का ज्ञान सजे।
वह लाल बहादुर खड़ा हुआ, लाहौर कोट के श्रृंगों पर,
ललकार रहा जो म्लेच्छों को, भारत के उस गर्वित-स्वर से,

आक्रोश इंदिरा का धधका, लाखों वे पाकी सेनायें।
बंधन में रो-रो काट रहीं, बंदी-जीवन की सेवायें।
ओ भारत के रणधीर युवा, अपनी सीमा पर सजग रहो,
निज आन-बान, निज-धर्मदेश की रक्षा-हित कटिबद्ध रहो।

निज शक्ति, संगठन, भुजबल से, साहस से आगे वीर बढ़ो।
ओ धीर-वीर रण-कौशल से, भारत का गौरव-गान करो।
जम्बू द्वीपे कश्यप-सागर, पर्यंत देश-विस्तार रहा,
उत्तर हिमगिरि, वह ब्रह्मदेश, प्राची-सीमा निर्धार रहा।

हिन्दू ही बल इस धरती का, हिन्दू ही राष्ट्राधार रहा,
दृढ़ हिन्दु-संगठन से ही प्रिय ! भारत-माता का त्राण रहा।
ओ भारत के लालों जागो ! नर-वीरों का इतिहास पढ़ो।
प्यारे स्वदेश की रक्षा-हित, नूतन भारत की नींव गढ़ो।

तुम वीर पुत्र माताओं के, ऋषियों के तुम अवदात ज्ञान।
निज शौर्य शक्ति से संरक्षित, भारत का रक्खो स्वाभिमान।
निज धर्म-कर्म निज-संस्कृति पर, दृढ़तम आस्था-विश्वास रहे,
बलिदान-व्रती रण-वीर बनो, जिससे स्वदेश को आश रहे,

कर महत् कर्म का अनुष्ठान, जो यशमय जीवन कर जाते,
अपने पौरुष से ही महान, इतिहास नया वे रच जाते,
ओ उठो हिन्दु-वीरो ! अपनी संगठन शक्ति का ध्यान करो,
अपना तन-मन-धन सब देकर, दृढ़-राष्ट्र-शक्ति-संधान करो ।
तुम धीर-वीर प्रणवीर व्रती, ज्ञानी सुजान बलवान बनो,
तन-मन-धन मेधाबल-समृद्ध ऋषियों-सम तुम विद्वान बनो।
ले हिन्दु-राष्ट्र-ध्वज सजग रहो, निज मातृभूमि का मान करो;
जो शत्रु-चरण इस ओर बढ़े, प्रतिकार-हेतु अभियान करो,
ले निजकर में निज अस्त्र-शस्त्र, उन शत्रु वृंदका नाश करो,
अपने बल-विक्रम-कौशल का, जग में नव तेज प्रकाश भरो
अपनी भाषा, शुचि-संस्कृति पर, ओ धीर तरुण ! अभिमान करो,
निज मातृभूमि के कण-कण का ओ धर्मवीर ! सम्मान करो ।
गंगा-जमुना-सा पावन-मन, आचरण-कर्म का मान रहे ।
उन्नत ललाट, दृढ़-वक्ष-हृदय, प्रेरणा-स्रोत हिमवान रहे ।
उन्नत चरित्रबल तन-मन से, मेधावी नीति-निधान बनो ।
तेजस्वी रामकृष्ण जैसे, निस्पृह प्रवीर हनुमान बनो ।
मानवी श्रेष्ठ गुण-आचरणों से बनो विश्व-मानव महान,
हो-व्याप्त चतुर्दिक महत्कर्म, इतिहास बनें वे यशोगान ।
दृढ़ शक्ति-संगठन के क्रम में, कोई न उच्च या नीच यहाँ,
सब हिन्दु परस्पर सुहृद्-बंधु ! सबके समान अधिकार यहाँ,
मत छू, मत पी, मतखा' वाली वे जाति-पाँति की सीमाएँ ।
तोड़ो युवजन ! सविवेक बढ़ो, दृढ़ हिन्दु-संगठन निर्माएँ ।
इस जाति-पाँति या ऊँच-नीच, भावों ने हिन्दू-बल तोड़ा ।
सोचो-समझो ओ हिन्दूमन ! यह देशपतन किसने जोड़ा ?
दृढ़ हिन्दु-संगठन, शौर्य-शक्ति, शिव-छत्रपती की शिक्षायें ।
ऋषि दयानंद की वाणी में, वेदों का अमृत बरसायें ।
तुम राम-कृष्ण के परमज्ञान, ऋषि धीर विवेकानंद बनो,
अपनी गुरुता का भर प्रकाश तुम विश्व-वंद्य अभिनंद्य बनो,
निज हृदय मिला, निजगले मिला, समभाव सभी का मान करो ।
निज राष्ट्र धर्म की सेवा में, तन-मन-धन सब बलिदान करो ।
वे नारद, ब्यास, वशिष्ठ, द्रोण थे कौन विदुर यह ध्यान करो,
वे परम पंचप्यारे गुरु के, उठ प्रातः उनका नमन करो ।
तात्या,[1] झलकारी,[2] वीरु-हीरु,[3] के रण-कौशल का मान् करो।
सब वीर-पुत्र भारत माँ के, उनको पूजो, सम्मान करो ।
वह हिन्दू क्या जिसके उर में हिन्दू-पन का अभिमान नहीं,
वह हिन्दू क्या जिसके उर में भारत-माता का मान नहीं ।

वह हिन्दू क्या जिसके उर में बलिदानों का अरमान नहीं ।
निज मातृभूमि की रक्षा-हित, कर धारण किया कृपाण नहीं ।
काश्यप-सागर तक भारत भू जो बने विप्लवी खंड-देश,
ईरानी अफगानी सारे जो आर्य-वंश धर हैं विशेष ।
अपनी विलासिता, अकर्मण्यता से पतित पराजित असुरों से ।
जो वृषल, सँभालो पुनः उन्हें, अपनी नव-संस्कृति-हल-चल से ।
अपना लो उनको दे प्रबोध, विस्मृत जिनको अब वेद ज्ञान ।
आसुर भावों से विरत करो, दे मानवता के विमल गान ।
हो रही उदित जो नवल विभा - ले दिव्यज्ञान, अरुणाचल की
नवभारत का निर्माण करो, दीपित कर गुरुता भारत की ।
बनकर ज्ञानी-विज्ञानी प्रिय ! निज तेज तरुण स्मरण करो
निज विक्रम निज ज्ञानाभा से, भूतल में नूतन दीप्ति भरो,
ज्ञानी-विज्ञानी भारत में, ऋषिवत् जो अब भी भ्राज रहे,
उनको पूजो जो भारत की आभा बन विश्व-विराज रहे ।
कण-कण इसभू का पावनतम, ओ वीरों यह है यज्ञ भूमि ।
इसको पूजो, इसको पूजो निज मातृभूमि यह देव भूमि !
अभिनंदनीय, चिरवंदनीय, इस भू का वंदन सतत करो ।
अरुणोदय-किरणों से जागृत प्रिय ! इसका पहले नमन करो ।
परिवर्तन क्रम में जग चलता युग-युग का अपना मान रहा,
निज राष्ट्र-संस्कृति-धर्म-हेतु युगवीरों का अभियान रहा,
वे राष्ट्र पुरुष, वे राष्ट्रव्रती, ज्ञानी-सुजान वे बलशाली ;
अपने भुजबल, रण-कौशल से भारत की विपदायें टालीं ;
वे वीर पूर्वज जो अपने, श्रद्धा से उनका नमन करो ;
पुरुषार्थी वीर-चरित्रों का, शतशः वीरों स्मरण करो
मनुवंशी मानव जग-सारा, हिमगिरि पर जिनकी नाव थमी ।
हंसी मनुसरवर लहर रहा, किरणों की जगमग ज्योति रमी ।
वे रामकृष्ण वे परशुराम, कश्यप-अगस्त्य, वल्मीकि व्यास ।
जिनके जीवन-सत्कर्मों से ज्ञानी-जन पाते ज्ञान-प्राश -
शिव-छत्रपती, जय छत्रसाल, गोविन्द सिंह जै बलिदानी,
अध्याय राष्ट्र अर्चना बनी, पूजो वह भूषण की वानी ।
वे वेद ऋचा की पार्वती, सरस्वती, जनकजा कल्याणी ;
अनुसूया रानी पद्मावति, दुर्गापति, झाँसी की रानी,
आदर्श हमारी मातायें, नित भारत वीरों ! नमन करो ।
उज्ज्वल चरित्र आदर्शों को पूजो अपना कल्याण करो ।
आसुर वंशी छलिया सारे, मिथ्या इतिहास बना गाते ;
अप्रतिम महान पूर्वजों पर, मिथ्या - आरोप जमा जाते ;

हम ऐसे कायर सुन सहते, कितने कटुतम अपमानों को,
ओ स्वाभिमान के व्रती वीर ! उत्तर दो दुष्ट-विधानों को ।
अपशब्द कह रहे, उन्हें जो कि, उन दुष्टों का मुख तोड़ चलो !
निज गौरव की रक्षा करते, सिर ऊँचा कर वर वीर चलो,
रटते निशिदिन, ईमान पाठ, जो होते केवल बेइमान,
उनका न कभी विश्वास करो, वे जन्मजात कपटी प्रमाण ।
उनमें न ज्ञान या ध्यान कहीं, उनमें न मातृभू मान कहीं,
वे शांति-प्रेम-मानवता के विद्वेषी, माँ का मान नहीं ।
आसुर भोजन पशुमात्र भोज्य, नैतिकता का सम्मान नहीं,
उनके अतिचारी आचरणों से, धरती का कल्याण नहीं ।
उनमें न वेद, ऋषि-ज्ञान कहीं, उनमें न राम या सीता हैं ।
उनमें न कृष्ण, हनुमान कहीं, उनमें न ज्ञान की गीता हैं ।
उनमें न पतिव्रत-मान कहीं, उनमें न मातृ सावित्री हैं,
जो ज्ञान-प्रभा, उनमें न कहीं, वह पावनतम गायत्री हैं ।
उनमें न कहीं आदर्श श्रेष्ठ, जो मानवता का मान करें ।
आदर्श न ऐसा जो उनमें, उत्तम चरित्र निर्माण करें,
जो पाओगे उनसे वीरों ! कामाचारी वह भोग मात्र,
जिसमें उदात्त मानवता के गुण कर्मों का केवल विनाश ।
अपनी अध्यात्मिक संस्कृति का, ओ भारत वीरों ! ध्यान करो,
जीवन-संयम-आचरणों के दिव्यादर्शों का मान करो ;
यह तो भौतिक विज्ञानी युग, परिवर्तन का झंझावाती
हिल रही सभ्यता की नीवें, आस्था-विश्वासों की थाती,
यह वर्ण-संकरी युग, जिसमें संस्कार सभी संकरित हुए ।
नास्तिकता की हुंकारों से, भगवान स्वयं ही डरे हुए ।
निरुपाय हो रही मानवता, आसुर धर्मों का अनाचार,
जलचर, थलचर, नमचर, वन-गिरि सर्वत्र व्याप्त कटु चीत्कार,
थर-थर कंपित भयभीत धरा, सहमी क्या रोये या गाये ?
विज्ञानी मानव से प्राणों का, भिक्षा-अंचल फैलाये ।

१- **तात्याटोपे -** हिन्दूभील युवक जो १८५६ के विप्लव में नाना साहब पेशवा का सेनापति था ।
२- **झलकारिनिबाई -** अछूत कोरी (जुलाह) जाति की कन्या जिसने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के लिए प्राण दिए ।
३- **वीरु -हीरु -** अछूत पाशी जाति का वीर युवक जो सन् १८५७ के गदर में राजा बेनीमाधव सिंह का सेनापति था ।

इस परिवर्तन झंझानिल में, जाने क्या-क्या उड़जायेगा ?
स्थिर मानवता का दर्शन, क्या शेष कहीं बच पायेगा ?
मर गया दिव्य संगीत राग, उन फिल्म-राग टुटवाँसों में
मर गया चेतना-काव्य आह ! इलियट प्रतीक के पाशों में ।
यह सुरा-सुंदरी का कलयुग, कुत्तों-कुतियों की फिल्में हैं
यह नग्न भोग कामाचारी, थिरकन की वेश्या चिलमें हैं ।
यह अंध-अनुकरण पश्चिम का, पूरब अस्ताचल-ओर चला,
इसलिए सजग हो तरुण-बाल ! यह घोर प्रदूषण घोल चला ।
भारत-संस्कृति करते विनष्ट, सत् वैदिक-धर्म-विनाश-हेतु
षड़यंत्र चल रहे शिक्षा में, टी०वी० फिल्में जो राहु-केतु ;
अध्यात्म-शून्य पर प्रिय ! बोलो, क्या जग यों ही चल पायेगा ?
क्या धर्म-धरा पर असुरों का तांडव यों चलता जायेगा ?
राणा-प्रताप, छत्रपति शिवा, नर छत्रसाल, गुरुसिंह वीर ;
रण-शंख-बजा, जो खींच गये, शुचि राष्ट्र-धर्म की वह लकीर !
पथ भ्रांत रही क्या देशभक्ति ? उनमें जो ज्वालायें भभकीं ?
ले राष्ट्र - अग्नि का स्वाभिमान, असिकर बालायें जो झुलसीं ;
सोचो समझो ओ राष्ट्रवीर ! उत्थान हेतु संकल्प वरो,
निज राष्ट्र धर्म का ध्यान करो, बलिपथ में शस्त्र-सँभाल बढ़ो ।
दिग्भ्रांत न हो, दिग्भ्रांत न हो, ओ धीर-युवक ! हो सावधान !
चेतो प्यारे ! निज राष्ट्र-धर्म का देखो भावी-वर्तमान ।
जब घोर अहिंसा व्याप्त हुई भारत-भू, मानव-चिंतन में,
आक्रमण हुए आसुर-यवनी, देखो इतिहासों के व्रण में,
सन् ४७ हिन्दू-हिन्दनाश, हिंसा से खंडित हुआ देश,
संकट कितने ही झेल रहा, यह खंडित होकर भी स्वदेश ।
सह सका न नाथूराम तभी, तिलमिला हृदय में हो अधीर,
सनसना गोलियाँ निकल गई वे घोर-अहिंसा-वक्ष चीर,
वह भूल हुई, या भला हुआ, कैसे किससे यह जाय कहा ?
निज देश-धर्म-आघात् आह ! उद्वेलित युव-मन नहीं सहा ।
उज्वल अतीत आदर्शों की, जो है अनंत-मालिका यहाँ,
प्रेरणा-स्रोत जो वर्तमान-भावी की दिव्य-पालिका यहाँ ।
गत-आगत और अनागत का, कर सफल समन्वय धीर-चलो,
निज स्वाभिमान से उठो वीर ! जग को अपना दे बोध-चलो,
जागृत हो युवकों संयम के, गर्वित निजत्व को पहचानो,
अपने नैतिक आदर्शों के रक्षण-हित जागो बलवानो ।
बन ब्रह्मचर्य के व्रतीवीर, तन-मन से तुम बलवान बनो,
शिक्षित विवेक के धनी, धीर, विज्ञानी, नीति-निधान बनो,

ओ ! उठो धरा के धर्मवीर ! वज्रंग राम के कर्मवीर !
नूतन प्रभात दो भूतल को, अज्ञान-तमिस्रा - वक्ष-चीर ।
अब जागो सोये हिन्दु-वीर ! गर्जो संगर की भाषा में,
निज अस्त्र-शस्त्र लो हाथों में, उत्सर्गों की अभिलाषा में ।

वह जीवन क्या जिसमें माँ की ममता का हुआ उभार नहीं,
वह अंतर क्या जिसमें धक-धक जागृत स्वदेश का प्यार नहीं ।
बोलो जयभारत, जयस्वदेश, जय रणचण्डी के वीर-वेश,
समवेत सजग आवेश वरो, फिर हो अखंड भारत-स्वदेश ।

ओ हिन्दु-धर्म के योद्धाओं ! संगठित - शक्ति निर्माण करो,
निज राष्ट्र-धर्म की मुक्ति-हेतु माँ-चरणों पर बलिदान धरो ।
उज्ज्वल अतीत जो अपना है, उज्ज्वलभविष्य निर्माण करो,
स्वाधीन धरा के लिए जियो, स्वाधीन धरा के लिए मरो ।

मुझको न स्वर्ग-अपवर्ग चाह, धन-मान न पद की अभिलाषा,
मैं मूढ़, समझ पाया न कभी, अपने कर्मों की परिभाषा,
क्या व्यक्त करूँ, कैसे कहदूँ, करता हूँ जो तुझसे आशा
ओ विभु ! तूही तो गढ़ता है, अंतर के भावों की भाषा ।

क्या देगा विभुहे ! दंड मुझे, वह ज्ञात न भावी-गति मेरी,
पर देना जो भी जन्म, मिले यह मातृभूमि मुझको मेरी,
देना जो कुछ भी सहलूँगा, सुख-दुख-मानापमान सभी
पर दूर न मन से हो पाये, प्रिय मातृभूमि का ध्यान कभी ।

प्रिय मातृभूमि के अंचल का मेरा प्यारा परिधान रहे,
तन-मन-धन इस पर न्योछावर, प्रिय मातृमही का मान रहे

(रचना पूर्ण- १२ नवंबर १९६३)

(प्रतिलिपि पूर्ण प्रातः शुक्रवार दि० १०-५-६६)

डॉ० राम कुमार सिंह
पी-एच० डी०, डी० लिट्०
ग्राम-पत्रालय- महरामऊ, त्रिपुरारिपुर
जनपद- उन्नाव (उ० प्र०)